श्री अरविन्द

जीवन और दर्शन

श्रीअरविन्द : जीवन और दर्शन

[देशके उच्चतम दार्शनिक संत श्रीअरविन्दकी जीवन-कथा और उनके विचारोंका परिचय]

रवीन्द्र

नवभारती सहकार प्रकाशन प्रतिष्ठान (सी०)
ए ८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली ७.

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण : अगस्त १९६९

मूल्य :

सजिल्द तीन रुपया

पेपर बैंक दो रुपया

मुद्रक :

कृपाल प्रिंटिंग प्रेस, शक्तिनगर, दिल्ली ७.

विषय-क्रम

दो शब्द

१. प्रारंभिक जीवन ३
२. नेता रूपमें १२
३. श्रीअरविन्दकी राजनीति १९
४. पांडिचेरी काल २५
५. शरीर-त्याग ३५
३. माताजी ४६
७. श्रीअरविन्दाश्रम ५१
८. पत्रलेखक श्रीअरविन्द ६३
९. श्रीअरविन्द और काव्य ६७
१०. श्रीअरविन्दका योग ७४
११. श्रीअरविन्द-दर्शन ७८
१२. श्रीअरविन्द और भारत ८४
१३. श्रीअरविन्द और मानव एकता ९०
१४. श्रीअरविन्द सोसायटी तथा ऑरोविल ९८

दो शब्द

श्रीअरविन्दके बारेमें कुछ लिखनेके लिए बहुत आग्रह किया जाता है। लोग कहते हैं हमें विश्वास है कि महापुरुषोंके जीवन चरित्र हमारे लिए अंधकारमें दीपकका काम देते हैं। हम उनका अनुकरण करके अपने जीवनको महान बना सकते हैं। परन्तु लिखनेवालोंको अपने सामने एक चट्टान दीखती है। श्रीअरविन्दने हमेशा अपनी जीवनी लिखनेवालोंके उत्साहपर ठंडा पानी डाला। वे एक पत्रमें कहते हैं "मेरा जीवन-चरित्र लिखना बिल्कुल असम्भव है। उसे कौन लिख सकता है ? सिर्फ मेरे बारेमें ही नहीं, किसी भी कवि, दार्शनिक, या योगीकी जीवनी लिखनेका प्रयास करना व्यर्थ है। ये लोग अपने बाह्य जीवनमें नहीं रहते। उनका असली जीवन आन्तरिक होता है और कोई अन्य व्यक्ति उसे कैसे देख सकता है ? हाँ कर्मरत पुरुषोंके बारेमें और बात है, जैसे जूलियस सीजर, नैपोलियन आदि जो अपने कर्मके द्वारा ही विकसित हुए हैं। उनके बारेमें भी ज्यादा अच्छा तो यही हो कि वे अपनी आत्मकथा लिखें।" इसपर भी लोगोंकी उत्सुकताको शान्त करनेके लिए यह छोटी-सी जीवनी हम लिख रहे हैं इसे बाजी, बाजी वा, बाजीके सिवाय क्या कहा जा सकता है ? लेकिन हमें विश्वास है कि श्रीअरविन्दने हमारी इस बालसुलभ धृष्टताको क्षमा कर दिया है।

श्रीअरविन्दके जीवनकी घटनाओंका लेखा-जोखा मिलना मुश्किल है। उन्होंने अपनी चीजोंका संग्रह करनेकी कभी कोशिश नहीं की। बड़ौदा कालकी बात है। अंग्रेजी और संस्कृतके प्रसिद्ध विद्वान् सर रमेशचन्द्रदत्त श्रीअरविन्दसे मिलने आये। कुछ रद्दी कागजोंपर कुछ लिखा हुआ देखा तो पढ़ने लगे। यह क्या? यह तो बाल्मीकि रामायणका अंग्रेजी कविता में अनुवाद था। रमेशचन्द्र अपने आप यह कार्य कर चुके थे। इसलिए इसके मूल्यको जानते थे। उन्होंने श्रीअरविन्दसे पूछा यह क्या है? श्रीअरविन्दने सहज भावसे उत्तर दिया "संस्कृत सीख रहा हूँ और अभ्यासके लिए इधर-उधरसे अनुवाद कर लेता हूँ।" रमेशदत्तके मुंहसे निकला आपके अनुवादको देखकर मुझे अपना अनुवाद किसी कामका नहीं लगता।

लेटिन और ग्रीक तो मानों श्रीअरविन्दकी घुट्टीमें घुली थी। एक बार फ्रेंच पुलिसके अफसर इनके घरकी तलाशी लेने आये। श्रीअरविन्द अपने काममें लगे रहे और उनसे कह दिया तुम्हें जो देखना हो देख लो। उन्होंने देखा श्रीअरविन्दके यहां लेटिन और ग्रीककी पुस्तकें रखी हुई हैं। उन्होंने कहा जो आदमी ये किताबें पढ़ता है वह कभी खतरनाक नहीं हो सकता। वे श्रीअरविन्दसे क्षमा मांगते हुए वापस चले गये।

यहां हम श्रीअरविन्दकी बतायी हुई मजेदार बातें दे रहे हैं जिन्हें हमारी संक्षिप्त-सी जीवनीमें स्थान नहीं मिल सका। इनमेंसे कुछ उनके पत्र-व्यवहारमें से और कुछ वार्तालापमें से चुनी गयी हैं।

गधेके बारेमें :—गधेके बारेमें लोगोंकी धारणा है कि वह बिल्कुल बेवकूफ होता है पर बात ऐसी नहीं है। एक बार कुछ घोड़ों और गधोंको एकसाथ एक अहातेमें बंद कर दिया गया और दरवाजेपर सांकल लगा दी गयी। घोड़े एकदम असहाय

अवस्थामें थे। "बेवकूफ गधे" ने ही सांकल खोलकर दरवाजा खोला।

उत्तर और दक्षिण :—श्रीअरविन्द भारतवर्षमें उत्तर और दक्षिणके भेदभावको नहीं मानते थे। उन्होंने भी पश्चिमी विद्वानों के सिद्धान्त पढ़े थे जिनके अनुसार उत्तर और दक्षिणके लोगोंमें जाति और भाषाके भेदोंकी दीवारें हैं। परन्तु दक्षिण भारत में आकर जब उन्होंने यहांके लोगोंके चेहरे देखे तो उन्हें पश्चिम के सिद्धान्तोंका खोखलापन दिखायी दिया। उन्होंने 'शुद्ध द्रविड़' कहानेवाले चेहरोंमें गुजरात, उत्तर भारत और महाराष्ट्रके लोगोंके चेहरे मुहरे पाये। नृशास्त्रकी दृष्टिसे वे इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि जातियोंमें चाहे जितना सम्मिश्रण क्यों न हुआ हो और भौगोलिक कारणोंसे चाहे कितने परिवर्तन हुए हों फिर भी सब बाहरी विभिन्नताओंके पीछे समस्त भारतमें एक भौतिक और सांस्कृतिक एकता है।

तमिल और संस्कृत :—हम पहले कह आये हैं कि श्रीअरविन्द बहुभाषाविद थे। उनका कहना है कि यह मान्यता ठीक नहीं कि संस्कृत और तमिल एक दूसरेसे बिल्कुल अलग है। उन्होंने संस्कृत और लेटिन शब्दोंके आपसी सम्बन्धके बारेमें खोज करते हुए देखा कि बहुत बार तमिल शब्द दोनोंके बीचकी कड़ी रहे होंगे।

राजनीति से किनारा :—श्रीअरविन्दने कहा "मैंने राजनीति को इसलिए नहीं छोड़ा कि उस दिशामें और कुछ करना असम्भव हो गया था। इस तरहका विचार मुझसे कोसों दूर था। मैं इसलिए अलग हुआ क्योंकि मैं नहीं चाहता था कि कोई भी चीज मेरे योगमें बाधक हो। इस बारेमें मुझे स्पष्ट आदेश मिल चुका था। मैंने राजनीतिसे सम्बन्ध तोड़ लिया परन्तु उससे पहले मैं जान चुका था कि मैंने इस क्षेत्रमें जो काम शुरू किया है वह अवश्य पूरा होगा और उसकी सफलताके लिए मेरी व्यक्तिगत उपस्थिति

की जरूरत न होगी। राजनीतिसे किनारा करनेमें निराशा या व्यर्थताका रंचमात्र भी न था।"

राजनीतिक लोग :—श्रीअरविन्दने कहा "जानते हो चित्त-रंजनदासने अपराधियोंके बारेमें क्या कहा है ? उनका कहना है अपने सारे अदालती जीवनमें मुझे इतने निकृष्ट प्रकारके अपराधी नहीं मिले जितने राजनीतिमें पाये जाते हैं।" वे अपने राजनीतिक अनुयायियोंको भली-भांति जानते थे।

भारतमें तमस :—यह कई कारणोंसे है। हिन्दुस्तानमें अंग्रेजोंके आनेसे पहले ही तामसिक प्रवृत्तियों और छिन्न-भिन्न करनेवाली शक्तियोंका जोर हो चला था। उनके आनेपर मानों सारा तमस ठोस बनकर यहाँ जम गया। कुछ वास्तविक काम होनेसे पहले यह जरूरी है कि यहां कुछ जागृति आये। तिलक, दास, विवेकानन्द—इनमें से कोई साधारण आदमी न था लेकिन इनके होते हुए भी तमस बना हुआ है।

भविष्यके लिए आशा :—श्रीअरविन्द कहते हैं अगर सबकुछ नष्ट-भ्रष्ट हो जाय, तो भी उस विनाशके परे नये सृजनकी राह देखूंगा। आज संसारमें जो कुछ हो रहा है उससे मैं जरा भी नहीं घबराता। मैं जानता था कि घटनाएं ऐसा रूप लेंगी। रही बात बौद्धिक आदर्शवादियोंकी। मैंने उनकी आशाओंको नहीं स्वीकारा, इसलिए मैं निराश भी नहीं होता।

और इस आशाको ही अपना आधार बनाकर हम अगले पृष्ठोंमें श्रीअरविन्दके बारेमें कुछ जाननेका प्रयास करेंगे। प्रत्येक अध्यायमें श्रीअरविन्दकी विभिन्न पुस्तकोंका पूरा-पूरा सहारा लिया गया है। श्रीअरविन्दकी बातोंको अपनी भाषामें उतारना एक असंभव-सा काम है। इसमें जो त्रुटियाँ रह गयी हों उनके लिए स्वयं लेखक जिम्मेदार है।

—रवीन्द्र

श्रीअरविन्द
जीवन और दर्शन

१

प्रारम्भिक जीवन

१५ अगस्त १९४७ को श्रीअरविन्दने लिखा था : "निःसन्देह, आजके दिन मैं प्रायः उन सभी जागतिक आंदोलनोंको, जिन्हें मैंने अपने जीवनकालमें ही सफल देखनेकी आशा की थी, यद्यपि उस समय वे असंभव स्वप्न जैसे ही दिखायी देते थे, सफल होते हुए या अपनी सफलताके मार्गपर जाते हुए देख सकता हूँ। इन सभी आंदोलनोंमें स्वाधीन भारत एक बड़ा पार्ट अच्छी तरह अदा कर सकता और प्रमुख स्थान ग्रहण कर सकता है।

"इन स्वप्नोंमें पहला था एक क्रांतिकारी आंदोलन जो स्वाधीन और एकीभूत भारतको जन्म दे। भारत आज स्वाधीन हो गया है पर उसने एकता नहीं प्राप्त की है। एक समय प्रायः ऐसा दीखता था मानो अपने स्वाधीन होनेकी प्रक्रियामें ही वह फिरसे उस पृथक्-पृथक् राज्योंकी अव्यवस्थापूर्ण स्थितिमें जा गिरेगा जो ब्रिटिश विजयसे पहले विद्यमान थी। परन्तु सौभाग्य से अब ऐसी प्रबल संभावना हो गयी है कि यह संकट टल जायगा और अभी पूर्ण न सही पर एक विशाल तथा शक्तिशाली एकत्व अवश्य स्थापित हो जायगा। विधान-परिषदकी दूर-दर्शितापूर्ण प्रबल नीतिने इस बातको संभव बना दिया कि दलित वर्गोंकी समस्या भी बिना फूट-फटावके हल हो जायगी।

परन्तु हिन्दुओं और मुसलमानोंका पुराना सांप्रादायिक भेद देशके स्थायी राजनीतिक विभाजनके रूपमें सुदृढ़ हो गया दीखता है। यह आशा करनी चाहिये कि इस तय किये गये विभाजनको पत्थरकी लकीर न मानकर एक कामचलाऊ अस्थायी उपायसे बढ़कर और कुछ न माना जायगा। क्योंकि यदि यह कायम रहे तो भारत भयानक रूपमें दुर्बल और अपंगतक हो सकता है, गृहकलहका होना सदा ही संभव बना रह सकता है, नये आक्रमण और विदेशी राज्यका हो जाना भी संभव हो सकता है। भारतकी आंतरिक उन्नति और समृद्धि रुक सकती है, राष्ट्रोंके बीच उसकी स्थिति दुर्बल हो सकती है, उसका भविष्य कुंठित, यहांतक कि व्यर्थ भी हो सकता है। यह नहीं होना चाहिये, देशका विभाजन अवश्य दूर होना चाहिये। हम आशा करें कि यह कार्य स्वाभाविक रूपसे ही हो जायगा, न केवल शांत और मेल-मिलापकी बल्कि मिलजुलकर काम करनेकी भी आवश्यकताको उत्तरोत्तर समझ लेने तथा मिलजुलकर काम करनेके अभ्यास और उसके लिए साधनोंको उत्पन्न कर लेनेसे संपन्न हो जायगा। इस प्रकार अंतमें एकता चाहे किसी भी रूपमें आ सकती है—उसके ठीक-ठीक रूपका व्यावहारिक महत्व भले ही हो, पर कोई प्रधान महत्व नहीं। परन्तु चाहे किसी भी उपायसे हो, चाहे किसी भी प्रकारसे हो, विभाजन अवश्य हटना चाहिये, एकता अवश्य स्थापित होनी चाहिये और होगी ही, क्योंकि भारतके भविष्यकी महानताके लिए यह आवश्यक है।

"दूसरा स्वप्न था एशियाकी जातियोंका पुनरुत्थान तथा स्वातंत्र्य और मानव-सभ्यताकी उन्नतिके कार्यमें एशियाका जो महान् स्थान पहले था उसी स्थानपर उसका लौट जाना। एशिया जग गया है, उसके बड़े-बड़े भाग स्वतंत्र हो गये हैं या इस समय बंधन-मुक्त हो रहे हैं, इसके अन्य भाग जो अभी-भी

परतंत्र या अंशत: परतंत्र हैं वे भी चाहे कैसे भी घोर संघर्षोंसे गुजरते हुए स्वतंत्रताकी ओर बढ़ रहे हैं। केवल थोड़ा ही करना बाकी है और वह आज न सही कल पूरा हो जायगा। उसमें भारतको अपना पार्ट अदा करना है और उसे उसने एक ऐसी सामर्थ्य और योग्यताके साथ करना शुरू कर दिया है जो अभीसे उसकी संभावनाओंकी मात्राको तथा उस स्थानको सूचित करती है जिसे वह राष्ट्रोंकी सभामें ग्रहण कर सकता है।

"तीसरा स्वप्न था एक विश्वसंघका जो समस्त-मानव जातिके लिए एक सुन्दरतर, उज्ज्वलतर और महत्तर जीवनका बाहरी आधार निर्मित करे। मानव-संसारका वह एकीकरण प्रगतिके पथपर है। एक अधूरा प्रारम्भ संगठित किया गया है पर वह बड़ी भारी कठिनाइयोंके विरुद्ध संघर्ष कर रहा है। किन्तु उसमें एक वेग है और वह अनिवार्य रूपसे बढ़ता चला जायगा और विजयी होगा। इसके कार्यमें भी भारतवर्षने प्रमुख भाग लेना प्रारम्भ कर दिया है, और यदि वह उस विशाल राजनीतिज्ञताको विकसित कर सके जो वर्तमान घटनाओं और तात्कालिक संभावनाओंसे ही सीमित नहीं होती बल्कि भविष्यको देख लेती और उसे निकट लाती है, तो भारतकी उपस्थिति मंद एवं भीरुतापूर्ण विकास और द्रुत एवं साहसपूर्ण विकासमें जो महान् भेद है उसे प्रदर्शित कर सकती है। जो कार्य किया जा रहा है उसमें महान् विपत्ति आ सकती है और वह उसमें बाधा डाल सकती है या उसे नष्ट कर सकती है, किन्तु तो भी अंतिम परिणाम निश्चित है। क्योंकि एकीकरण प्रकृतिकी आवश्यकता है, अनिवार्य गति है। इसकी आवश्यकता राष्ट्रोंके लिए भी स्पष्ट है, क्योंकि इसके बिना छोटे-छोटे राष्ट्रोंकी स्वाधीनता किसी भी क्षण खतरेमें पड़ सकती है और बड़े तथा शक्तिशाली राष्ट्रोंका भी जीवन असुरक्षित हो सकता है। इसलिए इस एकीकरणमें ही सबका हित है और केवल मानवी निःशक्तता

तथा मूर्खतापूर्ण स्वार्थपरता ही इसे रोक सकती हैं, परन्तु ये भी प्रकृतिकी आवश्यकता और भगवान की इच्छाके विरुद्ध हमेशा नहीं ठहर सकतीं। परन्तु एक बाहरी आधार ही पर्याप्त नहीं है, अंतर्राष्ट्रीय भाव और दृष्टिकोण भी अवश्य विकसित होने चाहियें, अंतर्राष्ट्रीय पद्धति तथा संस्थाएं भी अवश्य प्रादुर्भूत होनी चाहियें, शायद इस प्रकारकी प्रगतियां भी पैदा हों जैसे कि दो या अनेक देशोंका एकसंग नागरिक होना, संस्कृतियोंका आपसमें ऐच्छिक दान-प्रतिदान या उनका स्वेच्छापूर्वक घुलना-मिलना। राष्ट्रीयता तब अपने-आपको चरितार्थ कर चुकी होगी और अपनी युद्ध-प्रियताको छोड़ चुकी होगी, और तब वह ऐसी चीजोंको आत्मसंरक्षण तथा अपनी दृष्टिकी अखंडतासे असंगत नहीं अनुभव करेगी। एकत्वकी एक नयी भावना मनुष्यजातिपर आधिपत्य जमा लेगी।

"चौथा स्वप्न, संसारको भारतका आध्यात्मिक दान, पहलेसे ही प्रारम्भ हो चुका है। भारतकी आध्यात्मिकता यूरोप और अमरीका में नित्य बढ़ती हुई मात्रामें प्रवेश कर रही है। यह आंदोलन बढ़ेगा, वर्तमान कालकी विपदाओंके बीच अधिकाधिक लोगोंकी आंखें आशाके साथ भारतकी ओर मुड़ रही हैं और न केवल उसकी शिक्षाओंका अपितु उसकी आंतरात्मिक और आध्यात्मिक साधनाका भी उत्तरोत्तर आश्रय लिया जा रहा है।

"अंतिम स्वप्न था क्रमविकासमें अगला कदम जो मनुष्यको एक उच्चतर और विशालतर चेतनामें उठा ले जायगा और उन समस्याओंका हल करना प्रारम्भ कर देगा जिन समस्याओंने मनुष्यको तभीसे हैरान और परेशान कर रखा है जबसे कि उसने वैयक्तिक पूर्णता और पूर्ण समाजके विषयमें सोचना-विचारना शुरू किया था। यह अभीतक एक व्यक्तिगत आशा और विचार और आदर्शमात्र है जिसने भारत और पश्चिममें दोनों जगह दूरदर्शी विचारोंको वशमें करना शुरू कर दिया

है। इस मार्गकी कठिनाइयां प्रयासके किसी भी अन्य क्षेत्रकी अपेक्षा बहुत अधिक जबर्दस्त हैं पर वे दूर होंगी ही। यहां भी, यदि इस विकासको घटित होना है तो, चूंकि यह आत्मा और आंतर चेतनाकी अभिवृद्धिद्वारा ही होगा, इसका प्रारम्भ भारत-वर्ष ही कर सकता है और यद्यपि इसका क्षेत्र सार्वभौम होगा, तथापि केंद्रीय आंदोलन भारत ही करेगा।"*

कितने महान् स्वप्न हैं। स्वप्न अपने-आपमें महान हैं पर स्वप्नद्रष्टा उनसे कहीं अधिक महान् हैं। श्रीमाताजीने कहा है, "श्रीअरविन्द संसारके इतिहासमें जिस चीजका प्रतिनिधित्व करते हैं वह कोई विशिष्ट शिक्षा नहीं है, वह कोई ईश्वरीय ज्ञान भी नहीं है, वह है एक निर्णायक क्रिया जो सीधी परात्पर भगवानसे आयी है।"

ऐसे व्यक्तिके बारेमें कुछ लिखते हुए लेखनीको संकोच होता है। स्वयं श्रीअरविन्दने कहा है कि उनका जीवन बाह्य स्तरपर नहीं रहा है कि मनुष्य उसे देख सकें। आंतरिक जीवनके बारेमें उन्हें छोड़कर और कौन बोल सकता है? यह सब जानते हुए भी उनके जीवनकी कुछ छोटी-मोटी घटनाओंको, उनके कार्यको जाननेकी इच्छा होती है और अपनी इस पुस्तकके द्वारा हम उनके कार्यके बारेमें कुछ जाननेका प्रयास करेंगे। हमारा यह प्रयास वैसा ही होगा जैसे कोई नन्हा बालक समुद्रके किनारे बैठकर रेतके कण गिनना शुरू करे और उनके आधार पर समुद्रके बारेमें कुछ जाननेका दावा करे।

कहते हैं, जब धरतीके कष्ट बहुत बढ़ जाते हैं, नास्तिकता का राज्य होने लगता है और लोग अपने बनानेवालेको भूल जाते हैं, तो धरतीके अंतरसे एक पुकार उठती है जो सब प्रकार के व्यवधानोंको चीरती हुई अपने लक्ष्यतक जा पहुँचती है।

---

* स्वाधीनता-दिवसके संदेश से

उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तमें कुछ ऐसी ही अवस्था थी। भारत दासताकी जंजीरोंमें जकड़ा हुआ था। वह अपनी भारतीयताको भुलाता जा रहा था। उसे एक नये प्राणकी आवश्यकता थी। उसे आवश्यकता थी एक ऐसे व्यक्तिकी जो उसे तमस्‌मेंसे निकालकर ज्योतिकी ओर ले जा सके, जो उसे मृत्युके मुखसे निकालकर अमरता प्रदान करे। यह सब केवल इसलिए नहीं कि भारत महान् हो सके, वह दूसरोंपर अपना फौलादी पंजा कस सके बल्कि इसलिए कि इस चर्तुयुगीमें सारे संसारको आध्यात्मिक संदेश देनेका कार्य भारतको ही सौंपा गया है।

ऐसी परिस्थितियोंमें श्रीअरविन्दने १५ अगस्त १८७२ को पूरी तरहसे यूरोपीय आदर्शसे प्रभावित पिताके घर जन्म लिया। पिताकी इच्छा थी कि बालकको कहीं भारतीय हवा न लगने पाये, इसलिये शुरूसे ही सारी शिक्षा-दीक्षा अंग्रेजी भाषामें और अंग्रेजोंकी देखरेखमें हुई। इन्हें पहले दार्जिलिंगके मिशन स्कूलमें भरती किया गया और फिर १८७९ में अपने अन्य दो भाइयोंके साथ इन्हें इंगलैंड पहुंचा दिया गया और वहाँ ऐसी व्यवस्था की गयी कि इनपर भारतीयताकी छाया तक न पड़ने पाये। इनके अभिभावक, सेंडटपाल स्कूलके मुख्याध्यापकने इन्हें ग्रीक सिखायी और अपने स्कूलकी उच्च कक्षाओंमें भरती कर लिया। वहांपर उन्होंने अपनी पाठ्यपुस्तकोंपर तो सरसरी नजर दौड़ायी और अपना शेष समय अधिक व्यापक अध्ययन, विशेषत: अंग्रेजी काव्य, साहित्य एवं गल्प तथा फ्रेंच साहित्य और प्राचीन, मध्य-युगीन एवं अर्वाचीन यूरोपके इतिहासके अनुशीलनमें ही व्यतीत किया। उन्होंने ग्रीक और लैटिन तथा अंग्रेजी और फ्रेंच भाषाओं पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया तथा जर्मन, इटालियन, स्पेनिश आदि अन्य यूरोपीय भाषाओंका भी परिचय प्राप्त किया।

अपने पिताकी इच्छा पूरी करनेके लिए वे आई. सी. एस. की परीक्षामें बैठे पर जानबूझकर घुड़सवारीकी परीक्षा न दी

और इस तरह अपने-आपको अनुत्तीर्ण करवा लिया। इन्हीं दिनों बड़ौदाके सर सयाजीराव गायकवाड़के साथ उनका परिचय हुआ और परिणामस्वरूप उनकी नियुक्ति बड़ौदामें हो गयी। वहां वे पहले भूमि-व्यवस्था-विभागमें रहे और फिर कई स्थान बदलते-बदलते बड़ौदा कालिजके वाइस-प्रिंसिपल हो गये। इसके साथ ही साथ महाराजको जब जरूरत पड़ती तो अपने भाषण तैयार करनेके लिए अथवा आवश्यक पत्र लिखनेके लिए श्री अरविन्दको बुला भेजते थे।

इंगलैण्डमें रहते हुए श्रीअरविन्दने यह निश्चय कर लिया था कि वे अपना जीवन देशसेवामें लगायेंगे और देशकी स्वाधीनता के लिए काम करेंगे। भारत आनेके बाद उन्होंने अपना नाम दिये बिना ही राजनीतिक विषयोंपर एक लेखमाला लिखनी शुरू कर दी, (न्यू लेम्प्स फार ओल्ड)। उस समयके नेताओंने इनके लेखोंको बहुत उग्र माना और उनका प्रकाशन रुकवा दिया। श्रीअरविन्दने देखा कि अभी परिस्थितियां अनुकूल नहीं हैं और देश उनके कार्यक्रमको स्वीकार करनेमें असमर्थ है, इसलिए वे पर्देके पीछे रहकर चुपचाप काम करते रहे। अपने सार्वजनिक कार्योंमें उन्होंने असहयोग एवं निष्क्रिय प्रतिरोधको स्वाधीनता-संग्रामके साधनके रूपमें अपनाया था। पर हां, वे सिद्धांत रूपमें अहिंसावादी न थे। उनके मनमें मेजिनी तथा जोन आफ आर्कके लिए बहुत आदर था।

उन दिनों भी श्रीअरविन्दकी कार्यशैली यह नहीं थी कि वे पहलेसे सोच विचारकर कोई योजना बना लेते हों। वे अपने सामने एक निश्चित लक्ष्य रखकर घटनाओंका निरीक्षण करते और शक्तियोंको तैयार करते रहते थे और जब उपयुक्त समय लगता तब कार्यक्षेत्रमें उतर पड़ते थे।

यहां हम इस बातकी ओर संकेत करते चलें कि अभीतक श्रीअरविन्दने योग शुरू नहीं किया था। यह और बात है कि

बिना प्रयासके, बिना किसी तैयारीके उन्हें कई ऐसी अनुभूतियां हो चुकी थीं जिनमेंसे एक-एकको पानेके लिए बड़े-बड़े साधक अपना सारा जीवन बिता देते हैं। जिस दिन श्रीअरविन्द इंग-लैण्डसे लौटे तो भारतकी भूमिपर पांव रखते ही उन्हें एक असीम शांतिका अनुभव हुआ। इतने वर्षोंसे बिछुड़े हुए लालको भारत मांका यह पहला उपहार था। यह शांति हमेशा उनके साथ रही और कठिनसे कठिन परिस्थितियोंमें भी उनकी रक्षा करती रही। आनेवाली कठिनाइयोंने भी रसास्वादन करा दिया। उन्हें पता चला कि उनके पिताको यह गलत समाचार (जिस जहाजसे उनके चलनेकी बात थी पर उससे चले नहीं थे) मिला कि जिस जहाजमें उनकी आंखोंका तारा आ रहा था वह समुद्र में डूब गया। पिताको श्रीअरविन्दसे बड़ी-बड़ी आशाएं थीं। समस्त आशाओंके विलीन होनेका समाचार सुनकर पिताकी जीवन-नौका भी डूब गयी। शायद श्रीअरविन्दके जीवनमें आने वाली कठिनाइयोंका यह प्रथम आभास था।

एक दिन श्रीअरविन्द बड़ौदाके पास किसी गांवमें टहल रहे थे। पास कालीका एक मंदिर था, वे उस तरफ चले गये और बिना किसी तैयारीके उन्हें कालीकी मूर्तिमें एक जीवित-जागृत शक्तिके दर्शन हो गये। इसीप्रकार कश्मीरमें तख्ते-सुलेकमान पर खड़े होते ही उन्हें निर्वाणका अनुभव प्राप्त हो गया।

ये सब चीजें अपने-आप होती जा रही थीं। भगवान्‌की ओरसे छप्पर फाड़कर उपहार पर उपहार दिये जा रहे थे। उधर सचेतन रूपसे श्रीअरविन्द अपनी सारी शक्ति भारत मांके चरणोंपर न्यौछावर कर रहे थे। इन्हीं दिनों भवानी मंदिरकी योजना बनायी गयी जिसके अनुसार ऐसे मतवालोंकी एक सेना तैयार करनी थी जो अपना सब कुछ त्याग कर, हथेलीपर सिर रखे मांकी सेवाके लिए प्रस्तुत हों। अभी ये सब तैयारियां हो रही थीं, नक्शेमें रंग भरा जा रहा था कि रंगमें भंग हो गया।

सरकारने बंगालका विभाजन कर दिया और पूरी तैयारीके बिना ही क्रांतिकारी लोग इसके विरुद्ध आंदोलनमें कूद पड़े। उनकी तथा सामान्य जनताकी पूरी तैयारी नहीं हो पायी थी इसलिए समुचित रूपसे सफलता न मिल सकी।

राजनीतिक काम बढ़ता जा रहा था। देशकी पुकार निरंतर जोरदार होती जा रही थी। श्रीअरविन्दने बड़ौदाका काम छोड़ दिया और बंगालमें आकर डेरा डाला। वहाँ राष्ट्रीय महाविद्यालयके आचार्यके रूपमें कुछ दिनोंतक काम किया। पर्दके पीछे रहते हुए वे क्रांतिकारी आंदोलनका पथप्रदर्शन भी करते रहे। १९०६ में वे वन्देमातरम्के कर्ताधर्ता बन गये। नामके लिए तो और लोग सम्पादन करते थे पर सचमुच जिम्मेदारी श्रीअरविन्द की ही थी। वन्देमातरम् अपने समयका सबसे अधिक लोकप्रिय पत्र रहा है, जिसने हजारों युवकोंके अन्दर एक नयी जान ला दी। यह पत्र विदेशी वस्तुओं तथा विदेशी सत्ताके बहिष्कार, स्वदेशीके प्रचार, राष्ट्रीय शिक्षण तथा निष्क्रिय प्रतिरोधके कार्यक्रमको लेकर चला था जिसका उद्देश्य था एक समानान्तर सरकार खड़ी कर देना। श्रीअरविन्दने वन्देमातरम्के नारेमें एक ऐसी शक्ति भर दी कि विदेशी सरकारका एक-एक आदमी उससे भड़क उठता था।

२

नेता रूपमें

देशमें रानाडे, गोखले, फीरोजशाह मेहताके नेतृत्वमें जो नरम दलकी नीति चल रही थी, सरकारके सामने अर्जियाँ गुजारनेकी जो आदत पड़ गयी थी, श्रीअरविन्दने उसका घोर विरोध किया और तिलकके साथ मिलकर वाम-पक्षकी जड़ें मजबूत कर दीं। इसका परिणाम हम सूरत-कांग्रेसमें देखते हैं जहां कांग्रेसमें जबरदस्त फूट पड़ी और उसके जीवनमें एक नये अध्यायका आरम्भ हुआ।

यहांपर यह जान लेना अप्रासंगिक न होगा कि श्रीअरविन्द भारतकी स्वाधीनताको इतना महत्व क्यों देते थे और भारतसे उनका मतलब क्या है। वे बड़ौदामें रहते हुए लिखते हैं: "राष्ट्र क्या है? हमारी मातृभूमि क्या है? वह धरतीका एक टुकड़ा या कोई शब्दालंकार नहीं है। वह एक महान् शक्ति है और राष्ट्रके करोड़ों व्यक्तियोंकी शक्तिसे मिलकर बनी हुई इकाई है।" वे कहते हैं, "स्वाधीन भारत लकड़ी या पत्थर का टुकड़ा नहीं है जिसपर छेनी चलाकर राष्ट्रकी मूर्ति तैयार कर ली जा सके। वह अपने चाहनेवालोंके हृदयमें निवास करता है और उन्हींमेंसे उसका उत्थान होगा। हम अपने जीवनमें स्वराज्यको कैसे ला सकते हैं? अपने अन्दरसे अहंको हटाकर,

उसकी जगह भारतकी प्रतिष्ठा करके। जैसे चैतन्य निमाई पण्डित न रहकर कृष्ण, राधा या बलराम बन जाते थे उसी तरह हममेंसे हरएकको अपना अलग जीवन छोड़कर राष्ट्रमें जीवित रहना चाहिये। जैसे मोक्ष चाहनेवाला सब कुछ छोड़कर केवल मोक्षकी ही सोचता है, वैसे ही हमें सदा अपने राष्ट्रके पुनरुत्थानमें रम जाना चाहिये। मांको स्वाधीन और महान् देखनेका हमारा पागलपन वैसा ही होना चाहिये जैसा श्रीकृष्णके दर्शन करनेके लिए चैतन्यका था। देशके लिए हमारा बलिदान वैसा ही उत्साहपूर्ण और बिना कोर-कसरका होना चाहिये जैसा जगाई-मधाईका था जिन्होंने भगवान् गोरांगके संकीर्तनमें भाग लेनेके लिए अपना राजवैभव छोड़ दिया। हम आज भी अपने छोटेसे व्यक्तित्व और देशके बीचमें चुनाव नहीं कर पाते। हम रुपयेमें एक आना तो देशसेवाके लिए देते हैं और पन्द्रह आने अपने-अपने बाल-बच्चों, अपनी सम्पत्ति, अपने नाम, अपनी सुरक्षा और अपने ऐश-आरामके लिए रखते है। लेकिन मां अपने-आपको देनेसे पहले हमारे सब कुछकी मांग करती है।

"हम औद्योगिक पुनरुत्थान, शिक्षा, राजनीति आदिके पुनरुत्थानकी योजनाएं बनाते हैं लेकिन ये सब गौण हैं उस आंतरिक पुनरुत्थानके सामने जिसकी हमें आवश्यकता है। मां हमसे विचारोंकी, योजनाओंकी, विधिविधानोंकी मांग नहीं करती। वे अपने-आप अपनी योजनाएं, पद्धतियां और विधि-विधान देंगी। उनकी मांग है हमारे हृदयोंके लिए, हमारे जीवनके लिए – इससे कुछ भी कम या अधिक नहीं।

"पुनरुत्थान वास्तवमें पुनर्जन्म है, ऐसा पुनर्जन्म जो बुद्धि, बड़ी-सी थैली, नीति, बाह्य परिवर्तन आदिके द्वारा नहीं लाया जा सकता। वह आयगा एक नूतन हृदयके द्वारा, वह आयगा हम जो कुछ भी हैं, उसे यज्ञकी अग्निमें फेंककर अक्षर जन्म लेनेसे। हमसे आत्मत्यागकी मांग की जा रही है। मां पूछती

है, तुममेंसे कितने हैं जो मेरे लिए जी सकें और मेरे लिए मर सकें।

"मां उत्तरकी प्रतीक्षामें है।"

आज देशको स्वाधीनता पाये इतने वर्ष हो चुके हैं, फिर भी ये शब्द उतना ही महत्व रखते हैं, आज भी मां हमारे उत्तरकी प्रतीक्षामें है। श्रीअरविन्दका कहना है कि भारत अपने लिए नहीं उठ रहा, वह उठ रहा है मानवताके लिए, भगवान्‌के लिए। उसका मुख्य काम है यहां, इस पार्थिव जगतमें भगवान का राज्य स्थापित करना, अभीतक जहां अविद्या, अधंकार और जड़ताका राज्य है वहां ज्ञान, चेतना और आलोकका राज्य लाना, संसारसे घृणा और वैमनस्यको हटा कर प्रेमको आसीन करना। भारत अगर उठ रहा है तो इसी उद्देश्यके लिए, इससे छोटा कोई लक्ष्य उनके लिए उपयुक्त नहीं है।

श्रीअरविन्दने कहा है कि पश्चिमके लोग भौतिक जीवनको उसकी चरम सीमातक पहुँचा चुके हैं। इंगलैण्डका क्रिया-कौशल, फ्रांसकी तर्कसंगत बुद्धि, जर्मनीकी विचारशील प्रतिभा, रूसकी भावप्रवण शक्ति, अमरीकाकी व्यापारशक्ति मानव-प्रगतिके लिए जो कुछ कर सकती थीं कर चुकीं। अब एक ऐसी चीजकी जरूरत है जिसे देना यूरोपके बसकी बात नहीं। ठीक ऐसे अवसरपर एशिया फिरसे जाग उठा है, क्योंकि दुनियाको उसकी जरूरत है। एशिया जगतके हृदयकी शांतिका रखवाला है, यूरोपकी पैदाकी हुई बीमारियोंको ठीक करनेवाला है। यूरोपने भौतिक विज्ञान, नियंत्रित राजनीति, उद्योग व्यापार आदिमें बहुत प्रगति करली है। अब भारतका काम शुरू होता है। उसे इन सब चीजोंको अध्यात्म-शक्तिके आधीन करके धरतीपर स्वर्ग बसाना है। यूरोपकी चमक-दमक, तर्कबुद्धि, सुव्यवस्था, प्राणशक्तिके साथ संपर्क पैदा करनेके लिए ही इंगलैण्डको हिन्दुस्तानमें पांव जमाने दिये गये थे और जब

उसका कार्य पूरा हो गया तो वह उतनी ही आसानीसे चला गया जितनी आसानीसे आया था। आज हमें अपने देशमें पुनः संगठन करना है ताकि भौतिक शक्ति, आध्यात्मिक शक्तिके साथ मिलकर काम कर सके, ताकि अंतर और बाह्यमें एक सामंजस्य पैदा हो सके। यही था श्रीअरविन्दकी राजनीतिका मुख्य संदेश।

श्रीअरविन्द वन्देमातरम्का प्रकाशन इसी उद्देश्यसे करते थे। वे वन्देमातरम्के लेख इस चतुराईसे लिखते थे कि स्टेट्स-मैनके सम्पादकको कहना पड़ा कि इस अखबारकी पंक्ति-पंक्ति में राजद्रोह भरा है, परन्तु वह इतनी अच्छी तरह छिपाया गया है कि कहीं भी कानून का पकड़में नहीं आ सकता। इन्हीं दिनों उस समयके वायसरायके सचिवने अपने गुप्त पत्रोंमें लिखा था 'इस समय देशमें जो राजद्रोहकी लहर चल रही है उसकी जड़ श्रीअरविन्द हैं जो प्रकट रूपसे उसमें भाग नहीं लेते परन्तु यदि सब अपराधियोंको जेलमें ठूंस दिया जाय और इस एक आदमी को बाहर रहने दिया जाय तो वह फिरसे चुपचाप बागियोंकी सेना तैयार कर लेगा।' खैर, श्रीअरविन्दको कानूनी पकड़में लेनेकी कोशिश की गयी और उन्हें पूरे एक वर्षतक हवालातमें रहना पड़ा लेकिन "जाको राखे साईयां, मेट सके कब कोय।" अदालतमें अपराध सिद्ध न हो सका और श्रीअरविन्द मुक्त कर दिये गये। हां, कारावासके इस एक वर्षने श्रीअरविन्दकी बहुत सहायता की जैसे भारतकी जमीनपर पांव रखते ही उन्होंने एक असीम शांतिका अनुभव किया था उसीतरह जेलमें रहकर "वासुदेवम् इदं सर्वम्" का अनुभव हो गया। उन्होंने देखा, जेलकी दीवारें नहीं हैं, भगवान् वासुदेव स्वयं खड़े हैं, जेलर, सन्तरी, न्यायाधीश, जेलमें बन्द चोर, डाकू बदमाश सब अपना-अपना रूप खोलकर वासुदेव बन गये। जिस सिद्धिको प्राप्त करनेके लिए लोग आजीवन तपस्या करते रहते हैं, श्रीअरविन्द

को वह सिद्धि सहज ही मिल गयी। यूं तो राजनैतिक बन्दी कारागार को कृष्णमंदिर कहा ही करते थे, परन्तु श्रीअरविन्द के लिए वह सचमुच कृष्णमंदिर बन गया।

श्रीअरविन्द एक सालतक जेलमें रहकर आये तो उन्होंने देखा कि देशकी हवा बदल गयी है। अधिकतर नेता जेलमें या देशके बाहर थे। जनतामें अवसाद और निराशा भरी थी। राष्ट्रीय भावना मरी तो न थी पर दब अवश्य गयी थी। परन्तु फिर भी वह मंदी आंचकी तरह फैल रही थी। पहले जहां राष्ट्रीय सम्मेलनोंमें उत्साहसे भरे हजारोंकी भीड़ हुआ करती थी वहाँ अब निष्प्राण लोग सैंकड़ोंकी संख्या भी पूरी न कर पाते थे। श्रीअरविन्दने निश्चय किया कि वे अकेले ही इस स्थितिका सामना करेंगे और जेलोंमें जा-जाकर भारत मांका संदेश सुनायेंगे। इसी सिलसिलेमें उन्होंने उत्तरपाड़ा अभिभाषण दिया था जो श्रीअरविन्दके जीवनको समझनेमें मील-पत्थरका काम देता है। इसमें उन्होंने पहली बार सार्वजनिक रूपसे अपने आध्यात्मिक अनुभवोंकी बात कही थी, वासुदेवके दर्शनकी बात कही थी। उन्होंने कहा कि अलीपुर जेलमें रहते हुए भगवान्‌ने उनसे कहा, "मैंने तुम्हें एक काम सौंपा है। तुम्हें इस राष्ट्रको उठाना है, मैं नहीं चाहता कि तुम अधिक समयतक इस चारदीवारीमें बन्द रहो। तुम शीघ्र ही छूट जाओगे, जाओ और मेरा काम करो।" दूसरे आदेशमें उनसे कहा गया, "इस वर्षके एकांतवासमें तुम्हें बहुत कुछ दिखाया गया है। जिन बातोंके बारेमें तुम्हें शंका थी उनको तुमने प्रत्यक्ष रूपसे देख लिया है! मैं इस देशको अपना संदेश फैलानेके लिए उठा रहा हूँ, यह संदेश उस सनातन धर्मका संदेश है जिसे तुम अभीतक नहीं जानते थे पर अब जान गये हो। तुम बाहर जाओ तो अपने देशवासियोंसे कहना कि तुम सनातन-धर्मके लिए उठ रहे हो, तुम्हें स्वार्थ-सिद्धिके लिए नहीं अपितु संसारके लिए उठाया जा रहा है।

जब कहा जाता है कि भारतवर्ष महान् है तो उसका मतलब है कि सनातन धर्म महान् है। मैंने तुम्हें दिखा दिया है कि मैं सब जगह और सबमें मौजूद हूँ। जो देशके लिए लड़ रहे हैं, उन्हींमें नहीं, देशके विरोधियोंमें भी मैं काम कर रहा हूँ। जाने या अनजाने, प्रत्यक्ष रूपमें सहायक होकर या विरोध करते हुए सब मेरा ही काम कर रहे हैं। मेरी शक्ति काम कर रही है और वह दिन दूर नहीं जब काममें सफलता प्राप्त होगी।"

इन्हीं दिनों श्रीअरविन्दने दो साप्ताहिक पत्र प्रकाशित करने शुरू किये—बंगलामें 'धर्म' और अंग्रेजीमें 'कर्मयोगिन्'। उन्होंने कहा, हम केवल सरकारका रूप बदलनेके लिए तैयारी नहीं कर रहे हैं, हम एक राष्ट्रको गढ़ना चाहते हैं। राजनीति तो इसका एक छोटा-सा भाग है। हम केवल राजनीति, सामाजिक संगठन, धार्मिक वाद-विवाद, दर्शन, साहित्य या विज्ञानतक ही अपने-आपको सीमित नहीं रखना चाहते। हमारे लिए सबसे अधिक महत्वपूण है धर्म और ये सब चीजें और इनके अतिरिक्त और बहुत कुछ हमारे धर्मकी परिभाषामें आ जाता है। जीवनके कुछ महान नियम हैं, मानव-विकासका एक सिद्धांत है और अध्यात्म विद्याका एक भण्डार है। ये सब तत्व हमारे सनातन धर्मके अन्दर आ जाते हैं। इसकी रक्षा करना, इसका प्रसार करना और इसका मूर्तिमन्त उदाहरण बनना भारतका कर्तव्य है। विदेशी प्रभावके कारण भारत अपने धर्मको खो बैठा है। सनातन धर्म सिद्धांतोंका, धार्मिक परिपाटियोंका एक समूह नहीं है, जबतक उसे जीवनमें न उतारा जाय, हमारे दैनिक जीवनकी छोटीसे छोटी और बड़ीसे बड़ी चीजके अन्दर—चाहे वह राजनीति हो या वाणिज्य, साहित्य हो या विज्ञान, वैयक्तिक आचरण हो या राष्ट्रीय कूटनीति—मूर्त्त रूपमें न लाया जाय तबतक उसकी सफलता नहीं होती। भारत जीवनके सामने योगका आदर्श रखनेके लिए उठ रहा है। वह योगके द्वारा ही सच्ची

स्वाधीनता, एकता और महानता प्राप्त करेगा और योगके द्वारा ही उनका रक्षण करेगा। श्रीअरविन्दने कहा कि भगवानकी इच्छा है कि भारत सचमुच भारत बने, यूरोपकी नकल करने वाला नहीं। तुम अपने अन्दर समस्त शक्तिके स्रोतको खोज निकालो, फिर तुम्हारे लिए समस्त क्षेत्रोंमें विजय ही विजय होगी।

श्रीअरविन्द इन दिनों यह देखनेकी कोशिश कर रहे थे कि राष्ट्रीय आँदोलनमें किस तरह नयी जान फूंकी जाय। कई प्रकारके प्रस्ताव आये, परन्तु उन्होंने देख लिया कि प्रस्तावित आंदोलनोंका नेतृत्व करना उनका काम नहीं है। स्वाधीनताका बीज बोया जा चुका था, अब उन्हें उच्चतर और अधिक ठोस कामके लिए अपने-आपको लगाना होगा। परन्तु जबतक क्षेत्र बदलनेका सीधा आदेश न आया तबतक वे पहलेकी तरह अपने काममें लगे रहे। एक दिन अचानक अंदरसे आदेश आ गया और श्रीअरविन्द अपना सारा काम छोड़कर चन्दननगर होते हुए पांडिचेरीमें आ पहुँचे (४ अप्रैल, १९१०)। यहाँसे उनके जीवनका एक नया अध्याय शुरू होता है।

३

श्रीअरविन्दकी राजनीति

श्रीअरविन्दके पांडिचेरी निवासके बारेमें कुछ कहनेसे पहले हम उनकी राजनीतिपर एक नजर डालते चलें। स्वयं श्रीअरविन्दके शब्दोंमें उनके राजनीतिक विचारों और कार्योंके तीन पहलू थे। सबसे पहला था वह कार्य जिससे उन्होंने आरंभ किया अर्थात् वह गुप्त क्रांतिकारी प्रचार और संगठन जिसका मुख्य उद्देश्य था सशस्त्र विद्रोहकी तैयारी करना। दूसरा था एक सार्वजनिक प्रचार जिसका प्रयोजन था सम्पूर्ण राष्ट्रको स्वाधीनताके आदर्शकी दीक्षा देना। जब वे राजनीतिक क्षेत्रमें उतरे तब अधिकतर भारतीय इसे असंभव-सी, पागलोंकी कल्पना मानते थे। यह समझा जाता था कि ब्रिटिश साम्राज्य अत्यंत शक्तिशाली है और भारत अत्यन्त दुर्बल। उसे पूरी तरह निःशस्त्र कर दिया गया है और वह इतना निर्वीर्य हो गया है कि ऐसे प्रयत्नोंके सफल होनेका स्वप्न भी नहीं देखा जा सकता। तीसरा पहलू था जनताका संगठन करना जिससे अधिकाधिक बढ़ते हुए असहयोग एवं निष्क्रिय प्रतिरोधके द्वारा विदेशी शासनका सार्वजनिक और संयुक्त रूपसे विरोध करके उसकी जड़ें खोखली कर दी जायं।

उस समय बड़े-बड़े साम्राज्योंके पास भी आजके जैसे भयंकर

हथियार न थे। हवाई जहाज तो अभी शुरू हो ही रहा था, तोप-बंदूकने भी इतना विकराल रूप धारण नहीं किया था। अभीतक अस्त्रोंमें राइफल ही मुख्य थी और श्रीअरविन्दका ख्याल था कि अगर भलीभांति संगठन कर लिया जाय और कुछ विदेशी सहायता भी प्राप्त कर ली जाय तो काम चल जायगा। भारतीय सेनाको देश-प्रेमका पाठ पढ़ाकर अंग्रेजी राज्यके विरुद्ध उभारना भी उनके कार्यक्रमका एक अंग था। उन्होंने अंग्रेज मानसका बहुत अच्छी तरह अध्ययन किया था। उनका कहना था कि अंग्रेज बहुत समय तक पत्थरकी मूर्ति बनकर न रह सकेंगे। यदि उन्होंने देखा कि विरोध बढ़ता जा रहा है तो बजाय इसके कि स्वाधीनता उनके हाथोंसे छीन ली जाय, वे यह ज्यादा पसन्द करेंगे कि वे अपने-आप ही स्वाधीनता देकर चले जायं।

श्रीअरविन्द पूर्ण रूपसे राजनीतिक शांतिवादी (पेसिफिस्ट) या अहिंसावादी नहीं थे। हां, देश और कालके अनुसार सर्वोत्तम नीतिके रूपमें उन्होंने निष्क्रिय प्रतिरोधको स्वीकार किया था। श्रीअरविन्दका मत था कि प्रत्येक राष्ट्रको यह अधिकार है कि स्वाधीनता प्राप्त करनेके लिए सशस्त्र क्रांतिका सहारा ले। हां, समय, परिस्थिति, साधन आदिको देखते हुए नीतिमें हेरफेर करना जरूरी है। श्रीअरविन्द यह भी मानते थे कि क्रांतिके लिए आवश्यक है कि आर्थिक जुएको उतार फेंका जाय और उद्योग-धंधे और व्यापारमें प्रगति की जाय।

वे चाहते थे कि भारतवासी अंग्रेजोंका पूरी तरह बहिष्कार करें, किसी भी क्षेत्रमें किसी प्रकारका सहयोग न दें और इस तरह राजकाजको असम्भव बनादें। वे ब्रिटिश व्यापारके बहिष्कार, सरकारी संस्थाओंके स्थानपर राष्ट्रीय विद्यालयोंकी स्थापना, स्वयंसेवकोंका संगठन, भारतीय उद्योग और व्यापारके पुनरुत्थानके पक्ष में थे। हम देखते हैं कि श्रीअरविन्दके बताये हुए इन कार्यक्रमोंको

बादमें सफलताके साथ उपयोगमें लाया गया। परन्तु जैसे-जैसे भविष्यके बारेमें श्रीअरविन्दकी दृष्टि स्पष्ट होती गयी वैसे-वैसे उन्होंने देखा कि इस आन्दोलनके लिए देश तैयार नहीं है और वे स्वयं इस कामके लिए नहीं हैं। उन्होंने देखा कि आंतरिक शक्तियोंकी प्रगति, भारतवासियोंके प्रतिरोध और अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओंके दबावसे ब्रिटेन भारतको स्वतंत्रता देनेके लिए विवश हो जाएगा। उसके लिए सशस्त्र क्रांतिकी आवश्यकता न होगी। स्वयं उनके लिए कुछ और ही काम चुना गया है।

अपने राजनीतिक कार्यमें श्रीअरविन्दने किसी प्रकारके विद्वेषको स्थान नहीं दिया था। वे अंग्रेजों या इंगलैण्डसे घृणा करनेके पक्षमें नहीं थे। उन्होंने स्वराज्यकी मांग इसलिए नहीं की कि अंग्रेजोंका राज्य अत्याचारी या खराब था। वे स्वराज्य केवल इसलिए चाहते थे कि यह प्रत्येक देशका जन्मसिद्ध अधिकार है।

यहां अपनी ओरसे कुछ कहनेकी जगह हम श्रीअरविन्दके ही कुछ वचन उद्धृत करेंगे जिनसे उनके राजनीतिक कार्य तथा ध्येयके बारेमें स्पष्ट जानकारी मिल सकेगी। हां, अनुवाद नहीं केवल भाव दिया जा रहा है। १९०८ में बम्बईमें भाषण देते हुए श्रीअरविन्दने कहा था, "स्वयं भगवान् ही सब कुछ कर रहे हैं, हम कुछ नहीं कर रहे। जब हमें कष्ट सहनेका आदेश होता है तो हम कष्ट सहते हैं ताकि औरोंको बल मिले। अगर भगवान् हमें फेंक दें तो इसका अर्थ है कि उस अवसरपर हमारी आवश्यकता नहीं है। अगर परिस्थिति बिगड़ जाय तो हो सकता है कि हमसे न केवल जेल जानेकी बल्कि प्राणत्याग करनेकी मांग की जाय। आज जो लोग नेता मालूम होते हैं हो सकता है कि कल उनसे आत्मबलि देनेको कहा जाय और तब हम जान लेंगे कि परिस्थिति की मांग यही है। हम खुशीसे बलि चढ़ जायंगे। अपनी बलि देनेवालोंके स्थानपर भगवान् और अधिक उपयुक्त

लोगोंको ले आयंगे। भगवान् स्वयं कार्य कर रहे हैं और वे ही कार्य हैं। वे अपनी संतानके हृदयोंमें अमर रूपसे विद्यमान हैं। बहुतोंके अन्दर यह श्रद्धा है। बहुतसे भगवान्‌के नामसे अपरिचित हैं, वे देशके लिए, जातिके लिए बलि चढ़ रहे हैं। परन्तु लौट-फिरकर बात वही है। भगवान् मेरे अन्दर, आपके अन्दर, सबके अन्दर मौजूद हैं। और देशके नामसे काम करते हुए कई लोग सीधे भगवानके आदेशका पालन कर रहे हैं। जब भगवान्‌की इच्छा होगी तब वे सब कुछ ठीक कर लेंगे। हमारी हलचल राजनीतिक स्वार्थोंके लिए नहीं है। हम धर्मके अनुसार अपना जीवन गढ़नेकी कोशिश कर रहे हैं और वह धर्म है भारतके तीस करोड़ लोगोंमें, स्वयं भारतमें भगवान्‌को पाना। हमारे कार्यमें तीसरी चीज है साहस। अगर तुम्हें भगवान्‌पर भरोसा है, अगर तुम यह मानते हो कि तुम कुछ नहीं कर रहे, तुम्हारे द्वारा भगवान् ही कार्य कर रहे हैं तब भला डर किस बातका? तुम्हारे अन्दर जो शक्ति काम कर रही है वह अमर है, उसे तलवार काट नहीं सकती, आग जला नहीं सकती और पानी डुबा नहीं सकता। वह शक्ति तुम्हारी रक्षा कर रही है। तुमने एक महान् कार्यको अपनाया है और चारों ओरसे उसका विरोध होगा। प्राचीन कालमें जब भगवान अवतार लेते थे तो साथ ही दैत्य भी आया करते थे जो भगवान्‌का विरोध करते थे। यह रीति सदासे चली आ रही है।

"ऐसा प्रयास करो कि तुम जो कुछ भी करो वह तुम्हारा अपना काम न हो, वह भगवान्‌का काम हो और वे ही तुम्हारे द्वारा कर रहे हों। तुम्हारे जीवनका एक-एक क्षण उनका हो। सच्चा नेता तुम्हारे अन्दर है। तुम्हें दूसरे देशों और राष्ट्रोंकी तरह प्रगति करनेकी जरूरत नहीं है, तुम्हें उनकी तरह दूसरोंको दबाने और कुचलनेकी जरूरत नहीं है। तुम्हें उठना है ताकि तुम दुनियाको उठा सको। वह ज्ञान जिसे ऋषियोंने पाया था

फिरसे आ रहा है उसे सारे संसारको देना होगा। तुम अपने जीवनको, अपने राष्ट्रके जीवनको भगवान्‌के कामोंके लिए उपयुक्त बनाओ। तब तुम देखोगे कि हमने केवल राष्ट्रीय स्वाधीनता ही नहीं प्राप्त की है बल्कि सारे संसारके लिए भगवान् द्वारा नियत किये गये काममें भाग लिया है।"

इसी लक्ष्यको सामने रखकर श्रीअरविन्द काम करते रहे। परन्तु अब भगवान् उनका काम बदलना चाहते थे। श्रीअरविन्दको पुलिसने पकड़ लिया और लालबाजारकी हवालातमें डाल दिया। श्रीअरविन्दने पुकारा, यह क्या भगवान्! मैं तो तुम्हारा ही काम कर रहा था, फिर यह क्यों? कुछ दिनोंके बाद अन्दरसे उत्तर मिला। उन्हें बतलाया गया कि सनातन धर्म क्या है। उन्हें बतलाया गया कि अन्यान्य भक्तोंकी तरह सनातन धर्म भी विश्वासों और क्रियाओंका समूह नहीं है। वह जीवन है—एक उच्चतर जीवन। अगर भारत उठ रहा है तो उस ज्योति को सारे संसारतक पहुँचानेके लिए। भारत अपने लिए नहीं, मानवजातिके लिए है और इसीतरह उसे अपने लिए नहीं मानवजातिके लिए महान् होना होगा। उसे सनातन धर्मका संदेश घर-घरमें पहुँचाना होगा।

एक और जगह श्रीअरविन्द कहते हैं: हमारे स्वराज्यके आदर्शमें घृणाके लिए स्थान नहीं है। हमारा आदर्श प्रेम और भ्रातृभावके आधार पर खड़ा है। वह केवल राष्ट्रके अन्दर एकताके स्वप्न नहीं देखता बल्कि राष्ट्रोंसे परे सारी मानवतामें ऐक्य चाहता है। हम अपने देशकी स्वाधीनता इसलिए चाहते हैं कि इसके द्वारा ही राष्ट्रोंमें सच्चा भ्रातृभाव आ सकता है। हम देशों और जातियोंके पृथक् व्यक्तित्वको मिटाना नहीं चाहते बल्कि उनके बीचसे घृणा, द्वेष और गलतफहमियोंकी बाधाओं को हटाना चाहते हैं। हम अपने अधिकारके लिए लड़ते हैं, परन्तु अधिकारोंसे वंचित करनेवालोंसे हम घृणा नहीं करते।

एक उद्धरण और। स्वाधीनता-प्राप्तिके बाद, आंध्र विश्व-विद्यालयको एक संदेश देते हुए श्रीअरविन्दने कहा था : भारतके सामने बहुतसी गंभीर समस्याएं हैं। कुछ दिशाएं ऐसी हैं जिनपर चलकर वह अन्य देशोंकी तरह उद्योग-धंधे, व्यापार आदिमें अच्छी प्रगति कर सकता है, एक मजबूत सामाजिक और राजनीतिक तंत्र बना सकता है, प्रचुर सैनिक बल इकट्ठा कर सकता है, सफल कूट-नीतिके द्वारा अपने वर्तमान लाभोंको सुरक्षित रखकर अधिक फैल सकता है और धरतीके एक बड़े भागपर छा सकता है। परन्तु इस महान दीखनेवाली प्रगतिमें वह अपने स्वधर्मको, अपनी आत्माको खो बैठेगा। यदि ऐसा हो जाय तो प्राचीन भारत और उसकी आत्मा बिल्कुल गायब हो जायंगे और जहां इतने देश और राष्ट्र हैं वहां एक और बढ़ जायगा। परन्तु यह न तो भारत के लिए और न संसारके लिए श्रेयस्कर होगा। आज जबकि संसार अधिकाधिक मात्रामें आध्यात्मिक सहायता और रक्षक ज्योतिके लिए भारतकी ओर ताक रहा है, ऐसी घड़ीमें यदि भारत अपने आध्यात्मिक दायको खो दे तो यह सबसे अधिक दुखद बात होगी। यह नहीं होना चाहिये और हर्गिज नहीं होगा। लेकिन फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि इस प्रकारका खतरा नहीं है। यही नहीं, इसके अतिरिक्त और बहुतसी भयंकर विघ्न-बाधाएं भी हैं जो देशकी ओर घूर रही हैं। आज या कल देशको उनका सामना करना पड़ेगा। हम सफल तो अवश्य होंगे पर हमें अपने-आपसे इस बातको न छिपाना चाहिये कि इतने लंबे अर्सेकी दासता और उसके अवरोधक और विनाशक प्रभावोंके बाद हमें एक महान् आंतरिक तथा बाह्य परिवर्तनकी आवश्य-कता है। तभी हम भारतके सच्चे उज्ज्वल भविष्यके स्वप्नको चरितार्थ कर सकेंगे।

४

पांडीचेरी काल

जैसा कि हम पहले देख आये हैं श्रीअरविन्द ४ अप्रैल, १९१० को पांडिचेरीमें आ पहुँचे। यह आगमन पांडिचेरीके लिए एक नया जीवन लेकर आया। कई पुरातत्ववेत्ताओंका कहना है कि अतीत कालमें पांडिचेरीका नाम विष्णुपुरी रह चुका है, यहां वैदिक अध्ययनके लिए एक बहुत बड़ा विद्यालय था और महर्षि अगस्त्यका आश्रम भी यहीं था। रोमन लोगोंके जमानेमें भी पांडिचेरी काफी महत्वपूर्ण स्थान रहा होगा। यहांसे थोड़ी दूर पुराने जमानेके रोमन सिक्कों तथा अन्य स्मारकोंका एक अच्छा खजाना मिला है। उसके बाद यह भारतमें फ्रेंच राज्यकी राजधानी बनी और इसने अंग्रेजों और फ्रेंच लोगोंकी बहुतसी लड़ाइयां भी देखीं। लेकिन जिन दिनोंकी हम बात कर रहे हैं उन दिनों पांडिचेरीमें महत्वपूर्ण चीज कुछ भी न थी। राष्ट्रीय भावनाका नामतक न था। फ्रेंच राज्यका प्रभाव जोरोंपर था और यहांके बहुतसे वासी पांडिचेरीको बृहत्तर फ्रांसका एक भाग तथा अपने-आपको फ्रेंच नागरिक समझते थे। लेकिन एक बात है। फ्रेंच लोग अतिथिका मान करते थे और उसके लिए मुश्किलें सहनेके लिए भी तैयार रहते थे। इसलिए उन दिनों अंग्रेजोंके आतंकसे त्रस्त कई देशभक्त यहां आ कर रहने लगे थे जिनमें

सबसे अधिक प्रसिद्ध थे तमिल भाषाको नया जीवन देनेवाले कवि सुब्रह्मण्यम् भारती।

पांडिचेरीमें आकर श्रीअरविन्द लगभग एकांतमें ध्यानावस्थित ही रहा करते थे। लोगोंसे मिलना-जुलना बंद-सा था। इन्हीं दिनोंमें श्रीअरविन्दने २३ दिनका उपवास किया। उपवास के समय उनका दैनिक कार्यक्रम ठीक-ठीक चलता रहा, आराम करने अथवा लेटे रहनेकी कोई आवश्यकता नहीं हुई। इससे पहले अलीपुर जेलमें भी वे इसीप्रकार १० दिनका उपवास कर चुके थे। परन्तु मजेकी बात यह है कि इन उपवासोंने उनके शरीरको कमजोर नहीं बनाया और उपवासके बाद उन्होंने उपवासके नियमोंका पालन करते हुए फलोंके रस आदि लेनेकी जगह सीधा-सीधा दैनिक भोजन लेना शुरू कर दिया।

मद्रास प्रदेशके एक प्रसिद्ध जमींदार रंगास्वामी अयंगार इसी कालमें श्रीअरविन्दसे मिलने आये। उनके गुरू नागाई जपताने अपना शरीर छोड़नेसे पहले उनसे कहा था कि उत्तरसे एक महान् योगी आयेगा, तुम उसकी शरणमें जाना। वह तुम्हारा कल्याण करेगा। उस योगीके चिह्न-स्वरूप उन्होंने बताया कि वह यहां आनेसे पहले तीन बातोंकी घोषणा करेगा। अयंगारका कहना था कि श्रीअरविन्दने मृणालिनीदेवीको जिन तीन पागलपनोंकी बात लिखी थी वही तीन घोषणाएं थीं। उस पत्रमें श्रीअरविन्दने लिखा था: "मेरे तीन पागलपन हैं। पहला पागलपन यह है कि मेरा दृढ़ विश्वास है कि भगवान्ने जो गुण, जो प्रतिभा, जो उच्च शिक्षा और विद्या, जो धन दिया है, वह सब भगवानका है, जो कुछ परिवारके भरण-पोषणमें लगता है और जो नितांत आवश्यक है उसीको अपने लिए खर्च करनेका अधिकार है, उसकेबाद जो कुछ बाकी रह जाता है उसे भगवान्को लौटा देना उचित है। यदि मैं सब अपने लिए, सुखके लिए, विलासके लिए खर्च करूं तो मैं चोर कहलाऊंगा। हिन्दू-

शास्त्र कहते हैं कि जो भगवान्‌का धन लेकर भगवान्‌को नहीं लौटाता, वह चोर है। आजतक मैं भगवान्‌को दो आना दे, चौदह आना अपने सुखमें खर्च कर, हिसाब चुकता कर, सांसारिक सुखमें मस्त था। जीवनका अर्धांश वृथा ही गया, पशु भी अपना और अपने परिवारका उदर भरकर कृतार्थ होता है।

"मैं इतने दिनोंतक पशुवृत्ति और चौर्यवृत्ति करता आ रहा था—यह मैं समझ गया हूँ। यह जानकर मुझे बड़ा अनुताप और अपने ऊपर घृणा हो रही है; अब नहीं, वह पाप जन्मभरके लिए मैंने छोड़ दिया है। भगवान्‌को देनेका अर्थ क्या है? अर्थ है धर्म कार्यमें व्यय करना। जो रुपया सरोजिनी या उषाको दिया है उसके लिए मुझे कोई अनुताप नहीं, परोपकार करना धर्म है। आश्रितकी रक्षा करना महाधर्म है, किन्तु केवल भाई-बहनको देनेसे ही हिसाब नहीं चुक जाता। इस दुर्दिनमें समस्त देश मेरे द्वारपर आश्रित है, मेरे तीस कोटि भाई-बहन इस देशमें हैं, उनमेंसे बहुतेरे अनाहारसे मर रहे हैं, अधिकांश कष्ट और दुःखसे जर्जरित होकर किसीप्रकार बचे हुए हैं, उनका हित करना होगा।

"क्या कहती हो, इस विषयमें मेरी सहधर्मिणी बनोगी? केवल सामान्य लोगोंकी तरह खा-पहनकर, ठीक-ठीक जिस चीजकी जरूरत है उसे ही खरीदकर और सब भगवान्‌को दे दूंगा—यही मेरी इच्छा है, अगर तुम सहमत हो, त्याग स्वीकार करो तो मेरी अभिलाषा पूर्ण हो सकती है। तुम कहती हो, मेरी कोई उन्नति नहीं हुई। यह उन्नतिका एक पथ दिखा दिया, क्या इस पथपर चलोगी?

'दूसरा पागलपन हालमें ही सिरपर सवार हुआ है, वह यह है कि चाहे जैसे भी हो, भगवान्‌का साक्षात् दर्शन प्राप्त करना ही होगा। आजकलका धर्म है, बात-बातमें मुंहसे भगवानका नाम लेना, सबके सामने प्रार्थना करना, लोगोंको

दिखाना कि मैं कितना धार्मिक हूँ। मैं इसे नहीं चाहता। ईश्वर यदि है तो उनके अस्तित्वको अनुभव करनेका, उनका साक्षात् दर्शन प्राप्त करनेका कोई-न-कोई पथ होगा, वह पथ चाहे कितना भी दुर्गम क्यों न हो, उस पथसे जानेका मैंने दृढ़ संकल्प कर लिया है। हिन्दूधर्मका कहना है कि अपने शरीरके, अपने भीतर ही वह पथ है। जानेके नियम भी दिखा दिये हैं, उन सबका पालन करना मैंने आरंभ कर दिया है, एक मासके अंदर अनुभव कर सका हूँ कि हिंदूधर्मकी बात झूठी नहीं है, जिन-जिन चिह्नों की बात कही गयी है उन सबकी उपलब्धि मैं कर रहा हूँ। अब मेरी इच्छा है कि तुम्हें भी उस पथपर ले चलूं, एकदम साथ-साथ नहीं चल सकोगी, क्योंकि तुम्हें उतना ज्ञान नहीं है, किन्तु मेरे पीछे-पीछे आनेमें कोई बाधा नहीं, उस पथपर चलनेसे सिद्धि सबको ही हो सकती है, किन्तु प्रवेश करना अपनी इच्छापर निर्भर करता है, कोई तुम्हें पकड़कर नहीं ले जा सकता, यदि तुम्हारा मत हो तो इसके संबंधमें और भी लिखूंगा।

"तीसरा पागलपन यह है कि अन्य लोग स्वदेशको एक जड़ पदार्थ, कुछ मैदान, खेत, वन, पर्वत, नदी भर समझते हैं, मैं स्वदेशको मां मानता हूँ, उसकी भक्ति करता हूं, पूजा करता हूँ। मांकी छातीपर बैठकर यदि कोई राक्षस रक्तपान करनेके लिए उद्यत हो तो भला लड़का क्या करता है ? निश्चित होकर भोजन करने, स्त्री-पुत्रके साथ आमोद-प्रमोद करनेके लिए बैठ जाता है या मांका उद्धार करनेके लिए दौड़ पड़ता है ? मैं जानता हूँ कि इस पतित जातिका उद्धार करनेका बल मेरे अन्दर है, शारीरिक बल नहीं, तलवार या बंदूक लेकर मैं युद्ध करने नहीं जा रहा हूँ, वरन् ज्ञानका बल है। क्षात्र तेज एक-मात्र तेज नहीं है, ब्रह्मतेज भी एक तेज है, वह तेज ज्ञानके ऊपर प्रतिष्ठित होता है। यह भाव नया नहीं है, आजकलका नहीं

है, इस भावको लेकर ही मैंने जन्म ग्रहण किया है, यह भाव मेरी नस-नसमें भरा है, भगवान्‌ने इसी महाव्रतको पूरा करनेके लिए मुझे पृथ्वीपर भेजा है। चौदह वर्षकी उम्रमें इसका बीज अंकुरित होने लगा था, अठारह वर्षकी उम्रमें इसकी प्रतिष्ठा दृढ़ और अचल हो गयी थी। तुमने न-मौसी (चौथी मौसी) की बात सुन कर यह सोचा था कि न मालूम कहांका बदजात मेरे सरल भलेमानस स्वामीको कुपथमें खींचे ले जा रहा है। परन्तु तुम्हारा भलामानस स्वामी ही उस आदमीको तथा और सैंकड़ों आदमियोंको उस पथमें, कुपथ हो या सुपथ, खींच ले आया था तथा और भी हजारों आदमियोंको खींच ले आयगा। कार्यसिद्धि मेरे रहते ही होगी यह मैं नहीं कहता पर होगी अवश्य।"

२९ मार्च, १९१४ का दिन आश्रमके लिए या यूं कहें कि श्री अरविन्दके अनुयायियोंके लिए बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। उस दिन श्रीमाताजी पहले-पहल श्रीअरविन्दसे मिलीं थीं। इस प्रथम मिलनके बाद ही उन्होंने लिखा : "कोई चिंताकी बात नहीं है यदि सैकड़ों मनुष्य घने अंधकारमें डूबे हुए हैं। वे जिन्हें हमने कल देखा था—वे तो पृथ्वीपर ही हैं। उनकी उपस्थिति इस बातका प्रमाण है कि एक दिन आयगा जब अंधकार प्रकाश में बदल जायगा, जब तेरा राज्य पृथ्वीपर कार्यरूपमें स्थापित हो जायगा।" और यह घोषणा करनेवाली माताजी कौन हैं यह श्रीअरविन्दके शब्दोंमें सुनिये—"श्रीमाताजी अतिमानस नीचे लाने के लिए ही आती हैं और उसका पूर्ण रूपसे अवतरण होनेपर ही उनकी पूर्ण अभिव्यक्ति संभव है। उनका मूर्तिमान् होना पृथ्वीकी चेतनाके लिए अपने अंदर अतिमानसको ग्रहण करने तथा उसे संभव बनानेके लिए जो रूपांतर जरूरी है उसे प्राप्त करनेका सुयोग है।"

१९२० में लोकमान्य तिलककी प्रेरणासे जोजेफ बेपटिस्टाने श्रीअरविन्दको एक पत्र लिखा जिसमें उनसे अनुरोध किया गया

था कि वे राष्ट्रवादी दलके मुखपत्रका संपादन स्वीकार कर लें। तिलकको आशा थी कि इस तरह वे श्रीअरविन्दको राजनीतिमें वापिस ला सकेंगे, परन्तु श्रीअरविन्दने उसे स्वीकार न किया। उनके पत्रका कुछ अंश यहां दिया जा रहा है।

"·····मेरे हाथमें इतने काम हैं कि मैं श्रीमान् सम्राटके होटलका मेहमान बनकर अपना समय बर्बाद नहीं करना चाहता। परन्तु यदि मुझे पूरी स्वतंत्रता होती तो भी शायद मैं न लौटता। मैं यहाँ एक स्पष्ट उद्देश्यसे आया हूँ।···पांडिचेरी मेरे एकन्तवासका आश्रय-स्थल है, यह मेरी तपस्याकी गुफा है। हां, यह सामान्यतः वैराग्यपूर्ण त्यागकी न होकर सर्वथा मेरे अपने ढंगकी एक निराली तपस्या है। बाहर आनेसे पहले मुझे आंतरिक दृष्टिसे अपनी साधनामें अपने आपको परिपूर्ण बना लेना चाहिये।

"मैं राजनीतिको निकृष्ट नहीं मानता, याकि मैं राजनीतिज्ञों की अपेक्षा बहुत ऊंची स्थितिमें हूँ। मैंने आध्यात्मिक जीवनपर बराबर बल दिया है और अब मैं उसको और अच्छे ढंगपर कर रहा हूँ, पर आध्यात्मिकतासे मेरा अभिप्राय संन्यास या संसार परित्याग नहीं है। इस जगत् और इसके पदार्थोंके प्रति मैं घृणा या अरुचि नहीं रखता। यहां कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो कम या अधिक परिमाणमें आध्यात्मिक न हो। एक संपूर्ण आध्यात्मिक जीवनमें हर वस्तुके लिए अवकाश होता है। ·····मेरा विश्वास है कि देश अब आजादीके रास्तेपर है और उसे प्राप्त कर लेगा, परंतु आजादीके बाद यह क्या रूप धारण करेगा यह बड़ा ही महत्वपूर्ण है।"

"मेरा विश्वास है कि भारतकी अपनी आत्मा और अपना बुद्धि वैभव है। मैं सामान्यतः किसीप्रकारके सामाजिक जनतंत्रमें विश्वास करता हूँ परंतु वह जनतंत्र भारतकी परंपराके अनुकूल होना चाहिये।"

इसके बाद दो बार उनसे कांग्रेसके सभापति-पदको स्वीकार कर लेनेके लिए आग्रह किया गया। लाला लाजपतराय, देवदास गांधी, देशबंधु दास, पुरुषोत्तमदास टंडन आदि इस निमित्त पांडिचेरी आये, पर श्रीअरविन्दने राजनीतिमें भाग न लेनेका निश्चय नहीं बदला। इसी प्रसंगमें उन्होंने देशबन्दुदाससे कहा था, "मैं एक महती शक्तिकी खोजमें हूँ। यदि वह शक्ति मिल गयी तो उसीको आधार बनाकर अपना कार्य अपने ढंगसे करूंगा।" श्रीअरविन्दको विश्वास था कि भारतका त्राण आध्यात्मिक शक्तिके द्वारा ही हो सकता है और वे अपने पूरे बलके साथ उसे धरतीपर लानेके काममें लग गये।

१९१४ में जब माताजी पहली बार पांडिचेरी आयी थीं तो उनके साथ मिलकर श्रीअरविन्दने 'आर्य' नामक एक अंग्रेजी मासिकका प्रकाशन शुरू किया। बादमें पुस्तकाकार छपनेवाले श्रीअरविन्दके अधिकतर महान् ग्रंथ इसी पत्रिकामें धारावाहिक लेखोंके रूपमें प्रकट हुए थे। उसी जमानेके लिखे हुए लेख अगर आज पढ़े जायं तो ऐसा प्रतीत होता है मानों संसारकी आजकी परिस्थितिको देखकर अभी-अभी लिखे गये हैं। इन लेखोंमें उच्चतम आध्यात्मिक दृष्टि है। वेदोंकी एक नयी दृष्टिसे व्याख्या है, काव्य शास्त्र और अंग्रेजी साहित्यपर क्रांतिकारी विचार हैं, भारतकी सभ्यता और संस्कृति, उसके साहित्य, उसकी कला, उसके धर्म और उसकी राजनीतिके बारेमें आध्यात्मिक दृष्टिसे एकदम नयी बातें बतायी गयी हैं। मानव-समाज की गुत्थियोंको सुलझाकर भविष्यका एक ढांचा दिया गया है। जितनी गंभीर और विपुल सामग्री श्रीअरविन्द एक महीनेमें तैयार करके देते थे उसे आत्मसात् करनेके लिए एक लम्बे अरसेकी जरूरत होती है। जब श्रीअरविन्दका आंतरिक काम बहुत बढ़ गया और "लेख" लिखनेके लिए समय निकालना कठिन हो गया तो लगभग ६ वर्ष प्रकाशित होनेके बाद 'आर्य' बंद हो गया।

प्रथम महायुद्धके समय माताजीको कुछ वर्षोंके लिए वापिस जाना पड़ा। उसके बाद वे २४ अप्रैल, १९२० को दूसरी बार और इस बार स्थायी रूपसे लौट आयीं। माताजीके आते ही काम बहुत अधिक तेजीसे होने लगा और २४ नवंबर, १९२६ को श्रीअरविन्दने सिद्धि प्राप्त की। इस सिद्धिके बारेमें उन्होंने एक जगह लिखा है "२४ नवंबर, १९२६ को श्रीकृष्णका पृथ्वीपर अवतरण हुआ था। श्रीकृष्ण अतिमानसिक प्रकाश नहीं हैं। श्रीकृष्णके अवतरणका अर्थ है अधिमानसिक देवका अवतरण जो जगत्को अतिमानस और आनन्दके लिए तैयार करता है। कृष्ण आनन्दमय हैं। वे अतिमानसको अपने आनन्दकी ओर उद्बुद्ध करके विकासका समर्थन और संचालन करते हैं।

इसके बाद श्रीअरविन्द एक प्रकारसे पर्देके पीछे चले गये और आश्रमका संचालन पूरी तरह माताजीके हाथमें आ गया। इस कालके बारेमें हमें कुछ भी नहीं मालूम। इन दिनों उन्होंने सबके साथ मिलना-जुलना छोड़ दिया था और वर्षमें केवल तीन बार विशेष अनुमति पाये हुए लोगोंको दर्शन दिया करते थे। परन्तु अंग्रेज सरकारको बराबर इनपर संदेह बना रहता था। उसका भय था कि शायद अपनी "तपस्याकी गुफा" में बैठकर श्रीअरविन्द किसी गुप्त सशस्त्र क्रांतिका सूत्र-संचालन कर रहे हैं। श्रीअरविन्दके संपर्कमें आनेवालोंपर बड़ी कड़ी निगाह रखी जाती थी।

आश्रमके चारों नुक्कड़ोंपर चौबीसों घंटे गुप्तचर विभागके आदमी चक्कर लगाते रहते थे। और यहां जो आता था उसके पीछे लग जाते थे। सर अकबर हैदरीकी सलाह पर, चक्रवर्ती राजगोपालाचारीने मद्रासके मुख्यमंत्री बननेके बाद इस पहरेको उठवा दिया।

१९३८ में नवंबर दर्शनसे ठीक पहले श्रीअरविन्दके पैरकी हड्डी टूट गयी जिसके कारण दर्शन स्थगित कर दिया गया।

दूसरा विश्वयुद्ध आरंभ होनेपर श्रीअरविन्दने खुले आम हिटलरका विरोध करते हुए मित्र राष्ट्रोंका पक्ष लिया और अपनी सहायताके प्रतीकस्वरूप उन्हें कुछ आर्थिक सहायता भी दी। जिसके भयसे अंग्रेज सरकार रातोंको चौंक पड़ती थी उसीसे युद्धके समय सहायता पाकर वह स्तंभित-सी रह गयी। फिर लंदनसे बी० बी० सी० पर उनकी सहायताके बहुत गीत गाये गये।

इसके बाद जब १९४२ में सर स्टेफर्ड क्रिप्स भारत आये तो श्रीअरविन्दने उनकी योजनाकी सराहना की और देशसे अपील की कि उसे स्वीकार करले। श्रीअरविन्दका कहना था कि अगर आपसी वैमनस्य छोड़कर उसपर अच्छी तरहसे अमल किया जाय तो भारतमें एकता और पूर्ण स्वाधीनताका विकास होगा। उस समय देशने श्रीअरविन्दकी सलाहको स्वीकार नहीं किया, परन्तु पीछे चलकर कांग्रेसके कई बड़े-बड़े नेताओंने स्वीकार किया कि यह उनकी भूल थी। अगर क्रिप्स-योजना स्वीकार कर ली गयी होती तो न पाकिस्तान बनता और न उसके बाद आनेवाली विपदाएं ही आ पातीं। परन्तु विधाताको अभी और अग्नि-परीक्षाएं लेनी थीं।

इसके बाद १५ अगस्त १९४७ को श्रीअरविन्दने वह ऐतिहासिक वक्तव्य दिया जिसे हम पहले उद्धृत कर चुके हैं।

गांधीजीकी मृत्युपर जब सारे देशमें कुहराम मच गया था तो तिरुचिरापल्ली रेडियोने श्रीअरविन्दका एक संदेश प्रसारित किया। उसमें उन्होंने फिरसे इस बातपर बल दिया था कि इस देशके भाग्यमें लिखा है कि यह एक हो और महान् हो। उन्होंने कहा था कि भारत मां अपने बच्चोंको अपने चारों ओर इकट्ठा करके एक महान् राष्ट्रीय शक्ति और संगठित प्रजाके रूपमें गढ़ेगी।

कोरियाकी लड़ाईके समय श्रीअरविन्दने फिरसे एक बार

राजनीतिक नेताओंको चेतावनी दी थी जिसमें चीनके भारतपर आक्रमण करनेकी संभावना दिखायी गयी थी। परन्तु दुर्भाग्यवश देशने क्रिप्स योजना संबंधी सलाहकी तरह इसकी भी अवहेलना की और परिणाम हमारी आंखोंके सामने हैं।

श्रीअरविन्दने ५ दिसंबर, १९५० को शरीर त्याग दिया। वह अपने आपमें एक अलग अध्याय है।

५

शरीर-त्याग

श्रीअरविन्दने ५ दिसम्बर, १९५० को १ बजकर २६ मिनट पर रात्रिमें महासमाधि ले ली। श्रीमाताजीने ७ दिसम्बरको एक संदेशमें बतलाया कि जबतक श्रीअरविन्दका कार्य पूरा न होगा तबतक वे पृथ्वीको छोड़ेंगे नहीं। पूरे १११ घंटे तक श्री-अरविन्दके शरीरमें दिव्य ज्योतिकी प्रभा बनी रही। मालूम होता था कि मर्त्यमें अमरत्व उतर आया है, शरीर कंचनकी तरह अपनी सहज आभा बनाये हुए था, उसमें किसी प्रकारका विकार हुआ ही नहीं था। श्रीमाताजीने १४ दिसम्बरको जो संदेश दिया उसमें कहा कि श्रीअरविन्दके लिए दुखी होना श्रीअरविन्दका अपमान करना है। श्रीअरविन्द हम लोगोंके साथ हैं—पहलेकी तरह सजीव और सचेतन, वे हम लोगोंको छोड़कर जा नहीं सकेंगे। हम उनकी उपस्थितिको पहलेकी तरह, पहले से भी अधिक जाग्रत् और जाज्वल्यमान अनुभव करते हैं। वे सदा हमारे साथ हैं, जो कुछ हम कर रहे हैं, सोच रहे हैं, अनुभव कर रहे हैं, सबके द्रष्टाके रूप में।

वस्तुतः किसी भी योगीकी मृत्यु—जिसे हम सामान्यतया मृत्यु कहते हैं—होती ही नहीं। उसकी चेतना भौतिक शरीरकी मर्यादासे अधिक होती है और जब वह सशरीर होता है तब भी

वह इस दैहिक आवरणसे बहुत ऊपर और महान् होता है। वह मनुष्यजातिके लिए जो कार्य करता है वह भी मूलतः उसकी स्वतंत्र और विशाल आत्माका कार्य होता है—उस आत्माका जो सनातन भगवान्‌की असीम एकतामें पूर्णतया सजग रूपमें अमरत्वका भोग करती है और जिसके लिए वास्तवमें जीवन और मृत्यु दोनों स्वांगमात्र हैं। श्रीअरविन्द जैसे योगीश्वरके संबंधमें तो मृत्यु शब्दका प्रयोग बिलकुल ही असंगत है, क्योंकि यह सब जानते हैं कि अतिमानसकी रूपांतरकारी शक्ति उनके शरीरके प्रत्येक अणुमें कार्य कर रही थी और उसका प्रभाव केवल आध्यात्मिक ही नहीं भौतिक भी था। श्रीअरविन्दके बारे में यह कभी नहीं कहा जा सकता कि उनको वृद्धावस्था या किन्हीं भौतिक कारणोंसे शरीर छोड़ना पड़ा।

यह सचमुच आध्यात्मिक विश्वके लिए महान् घटना है कि जब संसारमें श्रीअरविन्दके संबंधमें जाननेकी उत्सुकता अधिकाधिक बढ़ रही थी और उनकी योगसाधनाकी ओर संसारके साधक मुड़ रहे थे, प्रवृत हो रहे थे तो श्रीअरविन्दने एकाएक समाधि ले ली। पर श्रीअरविन्द सदासे ऐसी लीला करते आये थे। उनके लिए यह कोई नयी बात नहीं थी। आई० सी० एस० को त्यागकर बड़ौदेकी नौकरी की और जब बड़ौदेमें उनकी ख्याति विस्तार और ऊंचाईपर थी, उन्होंने उसे ठुकराकर बंगालमें राजनीतिक फकीरका जीवन बिताना अधिक पसंद किया और वहां जेलमें उन्हें भगवत्साक्षात्कार हुआ और फिर वे अखिल भारतीय नेता बन गये। फिर एक रात को सहसा वे गंगा पारकर चन्दननगर और फिर वहांसे पांडिचेरी पहुँचते हैं और अज्ञात जीवन बिताने लगते हैं। यहांसे उनकी आध्यात्मिक ज्योति विकीर्ण होकर सारे संसारपर छा ही जाना चाहती है कि वे सदाके लिए समाधि ले लेते हैं। कीर्ति, श्री, सदा हाथ जोड़े उनके पीछे-पीछे चलती रही परंतु उन्होंने पीछे मुड़कर

कभी उनकी ओर निहारातक नहीं। यह तो सच है कि इस महान् त्यागका वरण वे सदा हमारे लिए करते रहे और उनकी महा-समाधि भी मानवताके महान् कल्याणके लिए ही है। अपनी महान् और चिर-अमर कृति "सावित्री" में वे सांकेतिक रूपमें इसका घटनाका वर्णन करते हैं—

A day may come when she must stand unhelped
On a dangerous brink of the world's doom and hers,
Carrying the world's future on her lonely breast,
Carrying the human hope in a heart left sole
To conquer or fail on a last desperate verge.
* * *
In that tremendous silence lone and lost
Of a deciding hour in the world's fate,
* * *
Alone she must conquer or lone must fall.
* * *
Cry not to heaven, for she alone can save.
She only can save herself and save the world.

"एक दिन ऐसा आ सकता है जब वह एक भयंकर कगार पर, विश्वके और संहारके संकटापन्न द्वारपर अकेली निस्सहाय अवस्थामें खड़ी होगी और अपने शून्य वक्षस्थलपर विश्वका भविष्य तथा अपने अकेले परित्यक्त हृदयमें मानवजातिकी आशा को लिये होगी।····· विश्वके भाग्यके एक निश्चयात्मक क्षणकी उस नीरवताके अन्दर वह एकाकी और खोयी होगी·····चाहे वह अकेली ही विजयश्री पायगी या अकेली ही पराजित हो

जायगी।.....दैवको मत पुकारो, क्योंकि एकमात्र वही रक्षा कर सकती है। वह स्वयं ही अपनी रक्षा कर सकती है और और संसारकी भी रक्षा कर सकती है।

यह स्पष्ट ही श्रीमाताजीकी ओर संकेत है और इस संकेत को हम सभी पूरी तरह अच्छी तरह समझ रहे हैं।

नवंबर १९५० का "सिद्धि दिवस" का दर्शन श्रीअरविन्दका अंतिम दर्शन था। तब यह जन भी सौभाग्यवश वहीं था। श्री-अरविन्द और श्रीमाताजी सिंहासनपर विराजमान थे। हजारों दर्शनार्थी माल्यपुष्पसहित शांतिपूर्वक पंक्ति बांध दर्शनोंके लिए आते जा रहे थे। सारा कार्यक्रम बड़े आनन्दके साथ संपन्न हुआ। पहली और दूसरी दिसंबरको स्कूलका वार्षिकोत्सव था। खूब धूमधाम और चहल-पहल रही। पर कौन जानता था कि ठीक इसके बाद ही एक महान् दुःखांत अभिनय होनेवाला है। श्रीअरविन्दको इस उत्सवकी आनन्द समाप्तिका जब समाचार मिला तो वे बहुत प्रसन्न हुए और पूछा, "अच्छा समाप्त हो गया ?"

श्वास रुक जाने और हृदयकी गति बंद हो जानेके केवल आधा घण्टा पहले श्रीअरविन्दने अपने शांत करुणामय नेत्र खोले, पासवाले डाक्टरका नाम पुकारा और पानी पिया। चिकित्सा-संबंधी इतिहासमें मूत्रविष-संचारकी यह सबसे अनोखी मूर्छा थी। ५ दिसम्बरको श्रीअरविन्दने महासमाधि ले ली पर लग-भग चार दिनतक उनका दिव्य शरीर ज्योतिर्मय पुंजसे आलो-कित सुन्दर और स्वर्णवर्णका यथापूर्व रहा जबकि श्रीमाताजीने एक घोषणाके साथ समाधिक्रियाको अनिश्चित कालके लिए स्थगित कर दिया। वह प्रसिद्ध घोषणा यह है, "श्रीअरविन्दको आज समाधि नहीं दी जा रही। उनका शरीर अतिमानस प्रकाशके घनीभूत पुंजसे इतना परिपूर्ण है कि उसमें विकारके चिह्न कहीं भी दिखायी नहीं दे रहे। जबतक शरीर ठीक

अवस्थामें रहेगा तबतक वह इसी तरह शय्यापर लेटी अवस्थामें रहेगा।" और वह कई दिनतक अतुल महिमामयी शांतिमें वैसा ही अक्षुण्ण रहा। सहस्रों लोगोंने इस समय उनके दर्शन किये। अंतमें ९ दिसम्बरकी शामके ५ बजे उनकी देह शीशमकी लड़की के बक्सेसे रख दी गयी। इसमें चांदीकी पर्त तथा रेशमी कपड़े का स्तर लगा हुआ था, फिर बक्सको अत्यधिक सादगीके साथ किसी मतके धार्मिक कर्मकाण्डके बिना, प्रांगणके बीचोंबीच विशेष रूपसे तैयार किये गये समाधिस्थलमें उतार दिया गया।

श्रीअरविन्दके महाप्रयाणकी यह सारी घटना एक महत्व-पूर्ण और विचारपूर्वक किये गये संघर्षकी पराकाष्ठा थी। श्री-अरविन्दको पहलेसे इसका आभास मिल गया था। पिछले दो वर्षोंसे वे भविष्यकी योजनाओंके बारेमें कुछ मौनसे हो चले थे। उसी नवंबरमें उनको एक गुजराती ज्योतिषीकी भविष्यवाणी पढ़कर सुनायी गयी थी। इस ज्योतिषीने लिखा था, "१९५० में सूर्य और चंद्रमा योग है और चंद्रमा बारहवें ग्रहका अधिपति है इसलिए संभव है कि इस वर्ष श्रीअरविन्द अपने-आप इस शरीर को छोड़ दें।" १९६४ के बारे में भी वैसी कुछ भविष्यवाणी उसने की थी जब श्रीअरविन्द ९३ वर्ष पूरे कर चुके होते। यह सुनकर श्रीअरविन्दने हाथ ऊपर उठा कर कुछ हंसीमें कहा, "ओह, तिरानवे बर्ष!" श्रीअरविन्दने इन भविष्योक्तियोंको मन-गढ़ंत न मान कहा, "इस व्यक्तिको सत्यका कुछ ज्ञान अवश्य है।" तब किसीने प्रश्न किया, "इस वर्ष शरीर छोड़ देने की वाणीमें तो कोई सार नहीं है, है न? निश्चय ही ऐसा करनेका तो आपका विचार नहीं हैं?"

अपने धीर-गंभीर भावमें उन्होंने प्रत्युत्तरमें केवल एक ही रहस्यमय शब्द कहा, "क्यों?"

यह शब्द सबको आश्चर्यमें डाल देनेवाला था, क्योंकि वे यही आशा करते थे कि अतिमानसके अधिकाधिक अवतरणके

फलस्वरूप श्रीअरविन्दके जीवनका असाधारण रूपसे लंबा हो जाना उनके कार्यक्रमका ही एक भाग है। इस बीच एक आश्चर्यजनक घटना यह हुई कि जो लोग उनकी सेवामें रहते थे, उनके कमरेमें काम करते थे उनके प्रति वे सहसा अत्यधिक वात्यसल्यमय हो उठे। वे उनको जता देना चाहते थे कि उन सबकी सेवाओंका उनकी दृष्टिमें बड़ा मान है। उनका यह प्रेमप्रदर्शन अत्यंत मधुर और आनन्दायक होते हुए भी उसमें आसन्न विदाईकी तीखी गंभीरता अस्पष्ट रूपसे दिखायी पड़ती थी।

एक तीसरी आश्चर्यजनक घटना भी यहां दी जा सकती है। एक बार एक साधकको श्रीअरविन्दके मुखसे एक बड़ी अजीब-सी बात सुनायी पड़ी : इस साधकका कार्य था कि जो कुछ श्रीअरविन्द पत्र या पुस्तक रूपमें लिखवायें उसे लिपिबद्ध कर ले। वे पिछले कई वर्षोंसे "सावित्री" लिखवानेमें संलग्न थे। असीम महिमामय पर सहज था "सावित्री" विषयक उनका परिश्रम। इस महाकाव्यके निर्माणमें दिव्य दृष्टि और अनुभवके साथ-साथ इसी कोटिका धैर्य भी उनमें विद्यमान था। यहांतक कि पिछले दिनों वे इसकी ग्यारहवीं या बारहवीं आवृत्तिमें लगे हुए थे। पर एकाएक इस महान् प्रयाणके कोई दो महीने पहले उन्होंने अपने लेखकको यह कहकर चौंका दिया, "सावित्रीका काम अब मुझे शीघ्र समाप्त कर देना चाहिये।"

श्रीअरविन्दके योग और दर्शनका सार है वह गतिशील चेतना जिसे अतिमानस "सुप्रामेण्टल" कहते हैं। श्रीअरविन्दका लक्ष्य यह था कि अतिमानसको अवतरित कराकर एक नयी मानवताकी सृष्टि की जाय जो उच्च आत्मपूर्णताका आनन्द ले और प्रत्येक क्षेत्रमें दिव्य जीवन यापन करे। इसी लक्ष्यको लेकर उन्होंने अपने-आपको तथा माताजीको अतिमानसिक स्थितितक उठाकर नयी मानवजातिके लिए प्रारंभिक केंद्र तैयार करनेका

प्रयत्न किया। रोगोंसे मुक्ति, इच्छित आयु, शरीरके व्यापारोंमें परिवर्तन—सब अतिमानसिक अवस्थाके अंतिम फल हैं। निश्चय ही इन सबका काम मनुष्यके अन्दरकी दिव्य प्रकृतिको मूर्त्त रूप देना है। यह फल ही पृथ्वीपर अतिमानसिक जीवनको पूर्णतः सुरक्षित बना सकता है। इसकी प्राप्तिके लिए योगीको अंतमें निश्चेतनाकी दृढ़ चट्टानसे निबटना पड़ता है, क्योंकि यह निश्चेतना ही प्रच्छन्न भगवानका अंधकारमय आधार है और यहींसे विकासका स्वरूप प्रारंभ होता दीखता है।

श्रीअरविन्द और माताजी मनुष्यजातिके रूपमें मानवचरित्र की युग-युगकी कठिनाइयाँ अपने ऊपर लेकर पिछले २५ वर्षोंसे निश्चेतनकी इस चट्टान के साथ जूझ रहे हैं। १९३५ में, एक पत्रमें श्रीअरविन्द लिखते हैं: "मैं अपने निजके लिए कुछ भी नहीं कर रहा, क्योंकि मुझे अपने लिए न मोक्षकी आवश्यकता है न अतिमानसिक सिद्धिकी। यहाँ जो मैं इस सिद्धिके लिए यत्न कर रहा हूँ वह केवल इसलिए कि पार्थिव चेतनाके लिए इस कामका होना आवश्यक है और यदि यह पहले मेरे अन्दर न हुआ तो औरोंमें भी न हो सकेगा।" उनका समस्त अतिमानव-योग सचमुच ही एक महान् सेनापतिका युद्ध था—युद्ध उन शक्तियोंके विरुद्ध जिनके साथ अबतक किसी आत्मवेत्ताने युद्ध नहीं किया था। १९३५ के एक और पत्रसे उनके विचार इस संबंध में और स्पष्ट हो जाते हैं, "मैं व्यक्तिगत महानता प्राप्त करनेके लिए अतिमानसको नीचे उतारनेकी कोशिश नहीं कर रहा। मानवीय अर्थों में महानता या क्षुद्रता, किसीको महत्व नहीं देता। यदि मनुष्यकी बुद्धि मुझे इसलिए मूर्ख समझती है कि जो कार्य श्रीकृष्णने नहीं किया उसे मैं करनेका प्रयत्न कर रहा हूं तो इसकी मुझे परवाह नहीं। अतिमानसका अवतरित होना भगवानकी इच्छा है या नहीं, मैं इस अवतरणका मार्ग खोल देने या कम-से-कम इसको अधिक संभव कर देनेके लिए

भेजा गया हूं या नहीं—ये प्रश्न भगवानके और मेरे बीचमें हैं। चाहे लोग मेरी हंसी उड़ायें, मेरी धृष्टताके लिए समस्त विपत्तियोंका पहाड़ भी मेरे ऊपर टूट पड़े तो भी मैं आगे बढ़ता ही जाऊंगा, या तो मेरी विजय होगी या मेरी मृत्यु। इसी भावना से मैं अतिमानसकी खोजमें निकल पड़ा हूं, अपने लिए या औरों के लिए किसी प्रकारकी महानता प्राप्त करनेकी अभिलाषासे नहीं।" यह है आत्मत्यागका ज्वलंत साहस, एक योद्धा योगी का सजीव चित्र, जो अपने लक्ष्यके निकट पहुँचनेके लिए सब प्रकारके कष्ट सहनेको तैयार है। उनका मूल मंत्र यह अवश्य है "विजय या मृत्यु" पर उनकी मनःस्थिति ऐसी है कि वह इससे भी अधिक साहसी मंत्रका प्रयोग कर सकती है—"विजय के लिए मृत्यु।"

एक कुशल योद्धाकी भाँति ही श्रीअरविन्दने अपना अभूतपूर्व बलिदान करनेका निश्चय किया। इसके सिवाय उनके महाप्रयाणका कोई अर्थ ही नहीं हो सकता। उनके सामने दो प्रश्न थे—अतिमानसको न उतार पहले भौतिक चेतनाको तैयार करना अथवा अतिमानसको उतारकर भौतिक चेतनाको शीघ्र तैयार करना और इस तरह रूपांतरके कार्यको सुकर बनाना। इसी अंतिम उद्देश्यसे उन्होंने अपना बलिदान कर दिया। और यहाँ भौतिक चेतनाके प्रतिनिधिके रूपमें श्रीमाताजीको रूपांतरका कार्य सिद्ध करनेके लिए छोड़ दिया। इस कार्यके हो जानेपर श्रीमाताजीके द्वारा इस पृथ्वीपर मनुष्यजातिके लिए एक दिव्य जीवनकी नींव पड़ जायगी जो समय आनेपर फूले-फलेगा। १९३४ के एक पत्रमें वे लिखते हैं, "जो भार मेरे ऊपर है उसे केवल भगवत्प्रेम ही सह सकता है। और जिन्होंने भी अपना सर्वस्व त्याग कर पृथ्वीको अंधकारमेंसे निकालकर भगवान्‌की ओर ले जानेका एकमात्र लक्ष्य बना लिया है उन सबको यह भार उठाना ही पड़ता है।"

५ दिसंबरके सवेरेसे १११ घण्टेतक वे अपने कमरेकी एक सादी शय्यापर लेटे रहे—उस कमरेमें जहाँ उन्होंने अपने जीवन के २० वर्षसे अधिक आध्यात्मिक प्रयोगमें बिताये थे। आध्यात्मिक रूपमें 'भव्य और श्रीयुक्त'—केवल ये ही शब्द उनके शरीर की उस समयकी छविका वर्णन करनेमें समर्थ हैं—श्वेत दाढ़ी और चौड़े ललाटपर लहराते हुए श्वेत केशोंसे भरा चेहरा, बंद शांत आंखें, चौड़े रन्ध्रोंवाली उन्नत नासिका, दृढ़ होंठ जिनके कोनोंपर परमानन्दकी छाया थी, चौड़े चिकने स्कंध, विशाल वक्षपर मोड़ रखी गयी बाहें, एकके ऊपर एक रखे हुए मृदुल, कलामय पर समर्थ हाथ, एक बड़ी जरीके किनारेकी रेशमी चादरसे ढका हुआ, पौरुषपूर्ण पुष्ट शरीरका निचला हिस्सा, राजसी ढंगसे फैले हुए चरण जो यह याद दिला रहे थे कि उन्होंने अपने पवित्र चरणोंके स्पर्शसे ७९ वर्षोंतक इस पृथ्वीको धन्य तथा सनाथ किया है। कमरेका वातावरण मनुष्यको पवित्र और उज्वल बना देनेवाली शक्तिसे ओतप्रोत था। आज श्रीअरविन्द अपने अनुयायियोंके साथ एकाएक नवीन रूपमें घनिष्ठसे हो उठे और उन्होंने प्रत्यक्ष रूपमें उनको अपनी विशाल सत्तामें समेट लिया।

यह असंदिग्ध रूपसे कहा जा सकता है कि श्रीअरविन्द, जो हमारा पथप्रदर्शन करते थे, जिनसे हम प्रेम करते थे, अब भी अपना कार्यकर रहे हैं और उनकी अमृतमयी आश्वासनमयी वाणी अब भी स्पष्ट सुनायी पड़ रही है—"मैं यहीं हूँ, मैं यहीं हूँ—"आइ एम हीयर! आइ एम हीयर!" माताजीके इस कथनमें कि श्रीअरविन्दके लिए शोक करना अपमान-जनक है—क्योंकि वे यहीं हमारे पास हैं—सचेतन और सजीव, एक मूर्तिमान सत्य प्रतीत होता है। १७ दिसंबरके सुन्दर संदेशमें भी यही सत्य जाज्वल्यमान है। यह श्रीमाताजीकी आत्माकी उस गहराईसे निकला था, जहाँ श्रीअरविन्द और वे एक हैं—सर्वथा

एक। संदेश इस प्रकार है, "प्रभो ! आज सवेरे तूने मुझे इस बात का आश्वासन दिया है कि तू तबतक हमारे साथ रहेगा जबतक तेरा कार्य पूरा नहीं हो जाता–केवल उस चेतनाके रूपमें ही नहीं जो हमें मार्ग दिखाती और प्रकाश देती है, बल्कि कर्म के क्षेत्रमें एक सक्रिय सत्ताके रूपमें भी तू सदा हमारे पास रहेगा। तूने असंदिग्ध शब्दोंमें यह वचन दिया है कि तू अपनी समस्त सत्ताके साथ यहां वर्तमान रहेगा और जबतक यह पृथ्वी रूपांतरित नहीं हो जाती तबतक तू इसके वातावरणको नहीं छोड़ेगा। ऐसी कृपा कर कि हम तेरी इस अद्‌भुत उपस्थिति के योग्य बनें और अबसे हमारे अन्दरकी हरएक चीज तेरे महान् कार्यकी पूर्तिके लिए अधिकाधिक पूर्ण आत्मसमर्पण करने के संकल्पपर ही केंद्रित रहे।" २४ अप्रैल १९५१, को जब समुद्र-तटपर डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जीके सभापतित्वमें श्रीअरविन्द स्मारक विश्व-विद्यालय केंद्र* का अधिवेशन हुआ था तो उसका उद्‌घाटन करते हुए माताजीने कहा था, "श्रीअरविन्द हमारे बीच मौजूद हैं और अपनी सृजनशील प्रतिभाकी पूरी शक्तिके साथ विश्वविद्यालयके इस आयोजनकी देखरेख कर रहे हैं। वर्षोंसे वे ऐसे विश्वविद्यालयको भावी मानवजातिको अतिमानसिक प्रकाशके लिए तैयार करनेके सर्वोत्तम साधनके रूप में सोचा करते थे। उस अतिमानस प्रकाशके लिए जो आजके विशिष्ट व्यक्तियोंको पृथ्वीपर नया प्रकाश, नयी शक्ति और नया जीवन अभिव्यक्त करनेवाली नयी जातिमें रूपांतरित कर देगा। उन्हीं श्रीअरविन्दके नामपर मैं इस विशेषाधिवेशनका उद्‌घाटन करती हूँ जोकि उनके विशेष प्रिय आदर्शको चरितार्थ करने के उद्देश्यसे होने जा रहा है।"

हम लोग, जिनका आश्रमसे संबंध है, जिन्हें श्रीअरविन्दके

---

* अब इसका नाम श्रीअरविन्द अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केन्द्र हो गया है।

दर्शनोंका सौभाग्य एक बार भी हुआ है, यह प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं कि श्रीअरविन्द यथापूर्व अब भी विद्यमान हैं और जबतक इस जगत्के दिव्य रूपांतरका कार्य पूरा नहीं हो जाता तबतक वे हमारे बीच बने रहेंगे।

और महा-महिमामयी, जगज्जननी, महालक्ष्मी, महासरस्वती और महामहेश्वरी-रूपा यह हमारी माँ जबतक हमारे सामने हैं तबतक किसी भी बातकी चिंता क्यों ?

मां तेरी जय हो, जय हो !

६

माताजी

श्रीअरविन्दके बारेमें लिखते हुए यह असम्भव है कि माताजीका जिक्र न किया जाय। परन्तु माताजीको यह पसंद नहीं कि उनके बारेमें कुछ कहा या लिखा जाय इसलिए लेखकके सामने बड़ी कठिन समस्या खड़ी हो जाती है। हमें इतना कह कर ही चुप हो जाना पड़ता है कि श्रीअरविन्दके सारे कार्यके पीछे माताजीकी शक्ति ही काम कर रही है। उनके बारेमें श्रीअरविन्दने कहा है "श्रीमां अतिमानसको नीचे लानेके लिए आती हैं और अतिमानसका अवतरण उनकी पूर्ण अभिव्यक्तिको सम्भव बनाता है।"

आकाशवाणीके आग्रह पर माताजीने अपने जीवनके संस्मरण इन शब्दोंमें सुनाये थे "संस्मरण बहुत संक्षिप्त होंगे। मैं श्रीअरविन्दसे मिलनेके लिए हिन्दुस्तान आयी थी। मैं श्रीअरविन्द के साथ रहनेके लिए हिन्दुस्तानमें रही। जब उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया तो मैं उन्हींका काम करनेके लिए यहां बनी रही। उनका काम है सत्यकी सेवा करके और मानव जातिमें ज्योति लाकर, धरतीपर भागवत प्रेमके राज्यको जल्दी लाना।"

माताजी अपनी एक प्रार्थनामें भगवानसे कहती हैं "हे प्रभो,

मेरे सब विचार तेरे हैं, मेरे हृदयके समस्त आवेग और भावनाएं, मेरे सब इन्द्रिय ज्ञान, मेरे प्राणका प्रत्येक स्पंदन, मेरे जीवनकी प्रत्येक गतिविधि, मेरे शरीरका एक-एक अणु, मेरे रक्तका एक-एक बिन्दु तेरा है। में सर्व प्रकारसे और समग्र रूपसे तेरी हूँ, बिना कुछ भी बचाये समग्र रूपमें तेरी हूँ। मेरे लिए तू जीवन चुने या मरण, हर्ष लाये या शोक, सुख दे या दुःख, जो कुछ भी तेरी ओरसे मिलेगा वह सब शिरोधार्य होगा। तेरी प्रत्येक देन मेरे लिए सदा ही एक दिव्य देन होगी अपने साथ परम आनन्द लानेवाली दिव्य देन होगी।"

माताजीका शरीर फ्रांसमें पैदा हुआ था। जब वे तेरह वर्षकी थीं तो "·····प्रत्येक रात ज्यों ही मैं बिछौने पर लेटती मुझे ऐसा मालूम होता कि मैं अपने शरीरसे बाहर निकल आयी हूँ और सीधी ऊपरकी ओर, अपने मकानके ऊपरकी ओर, फिर शहरके ऊपर, बहुत ऊंचाईपर उठ गयी हूँ। फिर मैं देखती कि मैंने एक चमचमाता सुनहला चोगा पहन रखा है जो मुझसे बड़ा है, और जैसे-जैसे मैं ऊपर उठती वैसे-वैसे वह चोगा भी बढ़ता जाता, मेरे चारों ओर गोलाकार फैलता जाता, मानो शहरके ऊपर एक विशाल छतका रूप ले लेता। फिर मैं देखती कि सभी ओरसे मनुष्य, स्त्रियां, बच्चे, बूढ़े, बीमार, दुःखी बाहर आते हैं, वे चारों ओर फैले हुए चोगेके नीचे एकत्र होते और सहायताके लिए विनती करते, अपनी विपत्तियों, अपने दुःख-कष्टों, अपनी पीड़ाओंकी कहानियां सुनाते। उत्तर में वह नमनीय और सजीव चोगा प्रत्येक व्यक्तिकी ओर अलग-अलग फैल जाता और ज्यों ही वे उसे छूते त्यों ही वे आश्वस्त या नीरोग हो जाते और शरीरसे बाहर निकलनेके समयसे अधिक प्रसन्न और सबल बनकर अपने शरीरमें वापस चले जाते। कोई दूसरी चीज इससे अधिक सुन्दर मुझे नहीं प्रतीत होती थी, कोई दूसरी चीज मुझे इससे अधिक सुख नहीं देती

थी, और दिनके मेरे सभी कार्य रातके इस कार्यके मुकाबले, जोकि मेरे लिये सच्चा जीवन था, बड़े नीरस और भद्दे, सच्चे-जीवनसे खाली प्रतीत होते थे। प्रायः ही जब मैं इस तरह ऊपर उठ जाती तब मैं अपनी बायीं ओर एक वृद्ध पुरुषको देखती जो नीरव और निश्चल दिखाई देते और जो मेरी ओर हिताकांक्षी स्नेहकी दृष्टिसे ताका करते तथा अपनी उपस्थितिसे मुझे उत्साहित करते। ये वृद्ध व्यक्ति जो गहरे बैंगनी रंगका एक लम्बा चोगा पहने होते—मुझे पीछे मालूम हुआ—उसकी साकार मूर्ति थे जिसे दुःख-पुरुष (मैन आफ सॉरोज) कहते हैं।"

मानव दुर्बलताके कारण हम श्रीमाताजीको सामान्य मानव मां मान बैठते हैं और उनके दूसरे, अधिक महत्वपूर्ण तत्वकी अवहेलना कर जाते हैं। हमें मानव मांके आगे मचलनेकी, हठ करनेकी और उसपर अपना अधिकार जतानेकी आदत है परन्तु भगवती मांके साथ ये चीजें नहीं चल सकतीं। इनके आधारमें अहंकार काम करता है जबकि भगवतीके सामने अहंकार टिक नहीं सकता। यहां सच्चे प्रेमका राज्य है। मानव प्रेम बांधता है और सच्चा प्रेम सच्ची स्वतंत्रता देता है। यदि हम अपने आपको बदलनेके लिए तैयार हों तो दिव्यमाता हमें हाथ पकड़कर क्षुद्रतामेंसे ऊपर उठाती हैं और हमारे व्यक्तित्वके केन्द्रमें अहंकारकी जगह दिव्य तत्वकी स्थापना करती है। यूं तो हममेंसे हर एककी हृदय-गुहामें दिव्य तत्वकी चिनगारी मौजूद है, पर उसके ऊपर मनों कूड़ा-कबाड़ पड़ा रहता है जिसके कारण उसका अस्तित्व भी सन्देहका विषय बन जाता है। भगवती मां इस अग्निको प्रज्वलित करती हैं और एक बार उसकी ज्वाला धधक उठे तो अविद्या-अंधकारकी कोई बड़ीसे बड़ी शक्ति भी उसके सामने नहीं टिक सकती।

श्रीमाताजीने हमें सिखाया है कि हमें साधारण मानवके प्रमाद, आलस्य विषयभोग अथवा ज्वरसे भरे जीवनमेंसे बाहर

निकलना होगा। हमें भगवान्‌की प्राप्तिको अपने जीवनकी अनेक अभिलाषाओंमेंसे एक न मानकर अपने जीवनका एकमात्र लक्ष्य मानना होगा। श्रीअरविन्द कहते हैं "जो कुछ तुम चाहते हो उसे एक ओर रख दो और यह जाननेकी इच्छा करो कि भगवान् क्या चाहते हैं। केवल यह जाननेकी कोशिश करो कि भगवान्‌ने तुम्हारे लिए क्या उचित और आवश्यक निर्धारित किया है। इस प्रकार कर्तव्य कर्मकी भगवान्‌से जिज्ञासा करते हुए कर्म करना और फलका भार भगवान्‌पर छोड़ देना कर्म-समर्पणकी पहली सीढ़ी है।"

एक और जगह श्रीअरविन्द कहते हैं, "तुम्हें इस तरह परेशान नहीं होना चाहिये मानो सारी जिम्मेदारी तुम्हारे सिर है और सारा परिणाम तुम्हारे ही प्रयासपर निर्भर है। तुमसे कहीं अधिक शक्तिशाली सत्ता इस काममें लगी हुई है। चाहे कोई दुःखदर्द हो या महान् संकट, चाहे तुम्हारे अंदर कोई पाप या गंदगी उभर रही हो, तुम्हें किसी चीजसे नहीं घबराना चाहिये। भगवान्‌को ही दृढ़तापूर्वक पकड़े रहो, उनके वचनपर विश्वास करो—'मैं तुम्हें सब पापों और दोषोंसे मुक्त कर दूंगा।' जब तुम यह अनुभव करोगे कि भगवत्-शक्ति केवल प्रेरणा और पथप्रदर्शन ही नहीं करतीं, तुम्हारी सब क्रियाएं उन्हींकी शक्तिसे चलती हैं, तुम्हारी सब शक्तियां भगवान्‌की हैं,.....तो तुम संघर्ष और दुःखमय जीवनकी सीमाको पार करने लगोगे। परन्तु इसमें दिलकी सचाई बहुत जरूरी है। आदमी अपने-आपको बहुत आसानीसे धोखा दे सकता है। महत्वाकांक्षा रास्तेका एक बहुत बड़ा रोड़ा है। हमारे अन्दर छिपे हुए बहुत सारे विरोधी तत्व सहसा जाग जाते हैं और हमारे पथमें बाधा डालने लगते हैं। वे कभी-कभी बड़े सुहावने, सलोने और लुभावने रूप बनाकर आया करते हैं। उनके फेरमें न आकर, सीधे मार्गपर चलते जाना अत्यंत आवश्यक है और यह श्रीमाताजी

की सहायतासे ही हो सकता है।"

आज मानवताको माताजीके इस संदेशकी बहुत जरूरत है जिसमें वे कहती हैं हमारा साधारण लक्ष्य है विश्वमें विकासशील समन्वय लाना और परस्परविरोधी तत्वोंमें समस्वरता पैदा करना। धरतीपर इसे प्राप्त करनेके लिए मानव एकताकी बहुत जरूरत है और इसके लिए जरूरी है कि सबके अन्दर एक और अविभाज्य दैवी तत्व जाग्रत हो उठे। एक और संदेशमें माताजी ने बताया है कि एकता आयेगी और संसारमें भगवान् का राज्य स्थापित होगा—इसमें जरा भी संदेह नहीं। यदि हम खुशीसे भगवान्के इस काममें सहायता न देंगे तो प्रकृतिके थपेड़े हमसे यह काम करवाके रहेंगे।

७

श्रीअरविन्दाश्रम

श्रीअरविन्दाश्रम प्रचलित अर्थोंमें एक संस्था नहीं है। यह एक परिवार है। हम कह सकते हैं कि यह हमारे गुरूका कुल है। श्रीअरविन्द ४ अप्रैल, १९१० को अपने मुट्ठीभर साथियोंको लेकर पांडिचेरी आये थे। उनके साथ कुछ युवक थे जो श्रीअरविन्दके सहवाससे लाभ उठाना चाहते थे अथवा उनकी सेवा करनेके इच्छुक थे। उन दिनों यहाँ तरह-तरहकी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता था। "जो घर फूंके आपना सो चले हमारे संग" की बात थी। १९१४ की २९ मार्चको श्रीमाताजीने यहां पहली बार पदार्पण किया और श्रीअरविन्दसे भेंट की। दोनोंने एक दूसरेको पहचाना और भावी कार्यक्रम निश्चित हो गया। पर कई बाधाओंके कारण माताजीको एक बार जाना पड़ा और वे दूसरी बार २४ अप्रैल, १९२० को यहां आयीं। साधनाका कार्य तेज हो गया और १९२६ की २४ नवम्बरको श्रीअरविन्द और माताजीने सिद्धि प्राप्त की। उस दिनसे श्रीअरविन्दने लोगोंसे मिलना जुलना छोड़ दिया और इस नीड़की सारी व्यवस्था माताजीके हाथोंमें आयी। हम कह सकते हैं कि इसी दिनसे श्रीअरविन्दाश्रमके वर्तमान रूपका आरंभ हुआ।

लोग घर बार छोड़कर भगवानके मार्गपर चलनेके लिए,

अपनी नौकाएं जलाकर, मंझधारमें कूदने लगे। माताजीने साक्षात् महालक्ष्मी और अन्नपूर्णाका रूप धारण किया और सबकी देखभाल करने लगीं। लोग एक बार दर्शनके लिए आते और फिर यहींके हो जाते। माताजी उनकी सब आवश्यकताएं पूरी करती थीं ताकि वे पूरी तरह निश्चिंत होकर भगवानके काममें लग सकें। यह क्रम चलता जा रहा है और अब यहां बाल-वृद्ध सब मिलाकर १४०० के लगभग व्यक्ति हैं।

श्रीअरविन्दका आश्रम उनकी प्रयोगशाला है जहां विभिन्न परिस्थितियोंमें मनुष्यके प्रत्येक पहलूका अध्ययन होता है तथा उसे नाना प्रकारकी समस्याओंका सामना करके आंतरिक बलसे उनका मुकाबिला करनेकी विद्या सीखनी होती है। वहां जीवन को समग्र रूपमें लेकर उसे ऊंचा उठानेका प्रयास किया जाता है।

जहाँतक शिक्षाका संबंध है हमारे देशके सामने यह बड़ी समस्या है कि आधुनिकताकी धाराका पूरा लाभ उठाते हुए देशके आध्यात्मिक मूल्योंको किस तरह आगे लाया जाये। अपनी प्राचीन परंपरागत विद्याको आजके लिए कैसे उपयोगी बनाया जा सके और इन परस्पर विरोधी लगनेवाली धाराओं का समन्वय करके कैसे एक नयी ज्ञान गंगा 'बहायी जाये' जो प्राचीन अध्यात्म और अर्वाचीन भौतिक शास्त्रोंके पूरे लाभको हमारे जीवनमें उतार सके। देशवासियोंकी दृष्टिमें विस्तार कैसे लाया जाये जिससे वे "मेरा चूल्हा और मेरी चक्की" का झगड़ा छोड़कर विश्वमानव बन सकें और इसके साथ-ही-साथ प्रत्येक व्यक्तिको ऐसा अवसर मिल सके कि वह अपने दैनिक जीवनके झगड़ोंसे अलग रहकर अपने अन्दर छिपी हुई क्षमताओं को विकसित कर सके और अपने अन्दरके विभिन्न व्यक्तित्वोंमें सामंजस्य लाकर पूर्ण मानव बन सके।

यह केवल भारतके लिए ही नहीं संसारके लिए आवश्यक

है। श्रीअरविन्दके आश्रममें इस दिशामें एक महत्वपूर्ण प्रयोग हो रहा है। आश्रममें प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता, अपनी आवश्यकताके अनुसार इस प्रयोगमें भाग ले रहा है। वहांका वातावरण एक अपनी ही विशेषता रखता है जिसका वर्णन करना असंभव है। वहां एक शिक्षा केन्द्र है जिसमें विभिन्न देशों और प्रदेशोंके विद्यार्थी और अध्यापक एक ही छतके नीचे बिना किसी भेद-भावके काम करते हैं। हर एक बच्चा बिना विशेष प्रयासके पांच-छः भाषाएं तो जान ही लेता है और फिर आये दिन ऐसे भाषण और प्रदर्शनियोंके कार्यक्रम होते रहते हैं जिनके द्वारा भिन्न-भिन्न देशोंका परिचय होता है। यहांके विद्यालयमें प्रायः दस भारतीय और छः विदेशी भाषाएं सीखने की व्यवस्था है और लगभग डेढ़ हजारकी इस बस्तीसे अंग्रेजी, फ्रेंच, हिन्दी, बंगला, गुजराती, ओड़ीया, कन्नड़, तमिल आदिकी लगभग पंद्रह पत्रिकाएं प्रकाशित होती हैं और इन सब भाषाओं में साहित्य भी प्रकाशित होता रहता है।

विद्यार्थियोंको प्राचीन और नवीन दर्शन, साहित्य, इतिहास आदिके अतिरिक्त भौतिकी, रसायन, प्राणी शास्त्र, और इंजीनियरिंग तककी शिक्षा दी जाती है और उन्हें भरसक क्रियात्मक प्रयोग करनेके अवसर दिये जाते हैं। भारतीय शिक्षामें इसका विकास करनेके लिए भारतीय और पश्चिमी संगीत, नृत्य, चित्रकला, नाटक आदिकी भी समुचित व्यवस्था है।

इन सबके अतिरिक्त आजादीका वातावरण, जब आवश्यकता हो तो समुचित सलाह, अपनी क्षमताओंको विकसित करनेमें प्रोत्साहन और पूरे बाह्य विकासके साथ-साथ अंतरके साथ संबंध—ये आश्रम शिक्षा प्रणालीकी कुछ विशेषताएं हैं। आश्रममें विद्यार्थीके लिए पढ़ाई एक भार नहीं बनने पाती। वह भी खेल-कूद, नाच-गानके साथ-साथ जीवनका एक अंग होती है। उनके अध्यापक उनसे अनुचित लाभ उठानेवाले या

उनपर दबाव डालनेवाले नहीं होते। जो विद्यालयकी श्रेणीमें अध्यापक और विद्यार्थी हैं वही भोजनालयमें, क्रीड़ांगणमें साथी होते हैं जिनमें बराबरीका-सा संबंध होता है।

यूं तो चार वर्षकी आयुसे पढ़ाईका कार्यक्रम शुरू हो जाता है और स्नातकोत्तर श्रेणियोंतककी व्यवस्था है पर कहीं कठोर नियम नहीं है। कोई विद्यार्थी किसी विषयमें न चल सकनेके कारण अन्य सब विषयोंसे वंचित नहीं किया जाता। शिक्षा विषयक नाना प्रकारके परीक्षण हो रहे हैं जिनमें परीक्षाओंका महत्व बहुत कम कर दिया गया है। श्रीअरविन्दने हमें बताया है ज्ञान अन्दर है। अध्यापकका काम है कि वह विद्यार्थीके अन्दर छिपी हुई समझनेकी शक्ति और सहज ज्ञानको बाहर लानेमें सहायता दे। हर विद्यार्थीके विकासके बारेमें उसकी सलाह और उसका सक्रिय सहयोग जरूरी है और हर एकको इतनी सुविधाएं मिलनी चाहियें कि वह अपनी आवश्यकताके अनुसार अपनी ही गतिसे आगे बढ़ सके। लेकिन अगर वह न बढ़ना चाहे तो उसकी भी आजादी है।

इतना ही नहीं, आश्रम चेतनाके विकासमें पूरी-पूरी सहायता देता है। श्रीअरविन्दका कहना है कि चेतनाके विकासमें मनुष्य-योनि एक कदम है, इससे ऊपर उठना जरूरी है। आज न सही कल इसे अपने वर्तमान स्तरको छोड़कर ऊपर उठना ही होगा। विचार-जगत्में एकता, शांति, सामंजस्यकी बातें इस आनेवाले युगका प्रथम चिह्न हैं। परन्तु श्रीअरविन्दको इतनेसे ही संतोष नहीं है। वे इन सब दैवी संपदाओंको यहां पार्थिव जगत्में उतारना चाहते हैं और उनका कहना है कि यह काम भारतके जिम्मे है। भारत ही भगवान्को धरती पर लायेगा। आश्रम इस दिशामें एक प्रयास है।

श्रीअरविन्दाश्रममें प्रविष्ट होनेके लिए कोई नियम नहीं है। यहां पर उद्दालक, आरुणि अथवा उपमन्यु आदिकी तरह कड़ी

परीक्षाओंमेंसे उत्तीर्ण नहीं होना पड़ता। जो श्रीअरविन्दको अपना गुरू मानते हों, जो माताजीके बालक बनना चाहते हों, जिनके अन्दर कुछ आग हो वे श्रीअरविन्दके परिवारके सदस्य बन सकते हैं—'One who chooses the Infinite is chosen by the Infinite' आप अपने मनमें एक बार संकल्प कर लीजिये "and the heavens reject not." "स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।" परन्तु यह तो आरंभ है। साधकको अपना सारा जीवन, अपनी प्रत्येक क्रिया भगवान्‌को समर्पित करनी होती है। वह खाये तो प्राणाग्निहोत्र हो, वह सोये तो उसकी चेतना जागरूक रहे। उसकी प्रत्येक क्रिया, उसका प्रत्येक भाव अंतरात्माको प्रतिबिम्बित करता रहे। उसे तबतक अपना प्रयास करते रहना पड़ता है जबतक उसकी सारी चेतना अंतरात्माकी चेतना न बन जाये। वह पग-पगपर सत्यका ग्रहण और असत्यका त्याग करता रहे। परन्तु यह सब सरल नहीं है।

परांच खानि व्यतृणत् स्वयंभूः तस्मात् परां पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चित् धीरः प्रत्यगात्मानमैच्छन् आवृत्तचक्षुः अमृतत्वमिच्छन्॥

श्रीअरविन्द योगमें पुरानी परिपाटियोंके अनुसार जीवनका परित्याग करके मोक्ष या अपवर्ग पाना अथवा आवागमनसे पीछा छुड़ाना हमारा लक्ष्य नहीं है। पूर्णयोगके लक्ष्यके बारेमें श्रीअरविन्दने कहा है, "हमें अब कौनसी नयी वस्तु प्राप्त करनी है? प्रेम—क्योंकि अभीतक तो हमने केवल द्वेष और आत्म-संतोष ही पाया है। ज्ञान—क्योंकि अभीतक तो हमें केवल स्खलन, अवलोकन और विचारशक्ति ही प्राप्त हुई है। आनन्द—क्योंकि हम अभीतक सुख, दुःख और उदासीनता ही प्राप्त कर पाये हैं। शक्ति—क्योंकि अभीतक तो निर्बलता, प्रयत्न और पराजित विजय ही हमारे पल्ले पड़ी है। जीवन—अभीतक

हमने जन्म, वृद्धि, मरण ही तो पाया है, और हमें प्राप्त करना है ऐक्य क्योंकि अभीतक युद्ध और संघकी ही उपलब्धि हुई है न ! एक शब्दमें कहें तो हमें भगवान्‌को पाना है और अपने आपको उसके दिव्य स्वरूपकी प्रतिमाके रूपमें फिरसे गढ़ना है।

हम कह सकते हैं कि यह आश्रम उपर्युक्त लक्ष्यको सामने रखकर एक नया जीवन गढ़नेकी प्रयोगशाला है। जैसे वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशालामें भाति-भांतिके द्रव्य इकट्ठे करते हैं उसी तरह वैज्ञानिक माताजी और श्रीअरविन्दने भी अपने आश्रममें तरह-तरहके लोग इकठ्ठे किये हैं। बाहरसे आनेवाले हर प्रकारके आदमी यहांपर अपने वर्गके लोगोंको पायेंगे। यहां सोना भी मिल सकता है और पत्थर भी—यह सब खोजनेवालेकी दृष्टिपर निर्भर है। परन्तु वैज्ञानिकको अपनी सभी वस्तुएं एकसी प्रिय होती हैं और आवश्यक लगती हैं। जो काम कार्बनसे हो सकता है उस जगह सोना किस कामका ? इसी तरह जिन्होंने समस्त मानव-जातिको बदलनेका बीड़ा उठाया है उन्हें अपने आप यहाँ इस कीचड़में धंसना ही पड़ता है। केवल सात्विक लोगोंको अपने साथ लेकर इस महान् कार्यकी पूर्ति करना संभव नहीं है।

परन्तु अभीप्सा करनेवाले हरएक व्यक्तिको घर बार छोड़कर यहां आ बैठनेके लिए नहीं कहा जाता। ऐसा कोई गज़ नहीं है है जिससे मापकर कह दिया जाय कि अमुक व्यक्ति यहां रहने योग्य है और अमुक नहीं। हर एक व्यक्तिकी व्यक्तिगत आवश्यकता, उसकी आंतरिक स्थिति और अन्य परिस्थितियोंको देखकर माताजी यह ठीक करती हैं कि कौन यहाँ रह सकता है और कौन नहीं। माताजीने कहा है, "जीवनके प्रति घृणासे प्रेरित होकर यहाँ योग करने नहीं आना चाहिये। जीवनकी कठिनाइयोंसे भागकर भी यहाँ नहीं आना चाहिये। भागवत प्रेम और भागवत सुरक्षा पानेके लिए भी यहाँ आनेकी जरूरत

नहीं है क्योंकि यदि तुम्हारी आंतरिक स्थिति ठीक है तो ये चीजें हर जगह बैठे-बिठाये मिल सकती हैं।

"जब व्यक्ति अपने-आपको पूरी तरह भगवान्‌की सेवामें लगा देना चाहे, अपने-आपको भगवान्‌के कामके लिए पूर्णतः न्यौछावर कर देना चाहे, जो अपनी सेवाके बदले भगवान्‌से कुछ न माँगे—शायद अधिकाधिक सेवा और समर्पणके अवसर माँगे जा सकते हैं—अगर यह हो तो कहा जा सकता है कि तुम यहाँ रहनेके लिए तैयार हो और तुम्हें यहाँके द्वार पूरी तरह खुले हुए मिलेंगे।

आश्रममें रहनेवालोंके लिए विधि-निषेधकी तालिका नहीं दी जाती। हरएकसे आशा की जाती है कि वह पग-पगपर अपनी अंतरात्माकी पुकार सुनकर उसके अनुसार कार्य करेगा। एक ही काम भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंके लिए भिन्न-भिन्न रूप धारण कर सकता है, जो एकके लिए अमृत है वही दूसरेके लिए विष हो सकता है। यहाँ हर एक काम भगवानका है और उसको समर्पित करके किया जाता है। "इदं न मम" की बात है। काम शरीरके द्वारा की गयी सर्वोत्तम प्रार्थना है। इसलिए कहा गया है, 'Let us work as we pray.' अगर काम समर्पण-भावसे किया गया हो तो, 'न कर्म लिप्यते नरे", केवल इतना ही नहीं वह ऊपर उठाता है और भगवान् की ओर ले जाता है।

आश्रममें पठन-पाठन, उच्च शिक्षा आदि से लेकर कपड़े धोने और जूते सीने तकके विभाग हैं और इनका बहुत-सा काम आश्रमवासियों द्वारा किया जाता है।

सन् १९६० में पं० सातवलेकरजी आश्रम आये थे। उन्होंने बड़े विस्तार से आश्रमके प्रत्येक विभागको देखा और कइयोंके बारे में बातचीत करते हुए बड़ी मजेदारी बातें कहीं। यहां पण्डितजीकी कुछ बातोंको उद्धृत करना अप्रासंगिक

न होगा।

"जिस चीजके लिए मैं पचास-साठ वर्षोंसे प्रार्थना करता आया हूँ, आज उसको यहाँ मूर्त रूपमें देख रहा हूँ। वैदिक युगके बाद इस धरतीपर शायद इस प्रकार का प्रयास पहली बार हो रहा है। यहाँकी साधना पूर्ण रूपसे वैदिक साधना है। जिन-जिन चीजोंकी ओर वेदने संकेत किया है वे सब यहाँपर प्रतिष्ठा पा रहीं हैं यह देखकर मेरा मन आनन्द-विभोर हो उठता है।" तिरानवे वर्षके युवक, वेदके प्रकाण्ड पंडित, जिनकी पुस्तकोंसे और जिनके जीवनसे हजारोंने प्रकाश पाया है, ऐसे पंडित श्रीपाद दामोदर सातवलेकर श्रीअरविन्दाश्रमके बारेमें बातें कर रहे थे। पंडितजी जीवनके नानाविध अनुभवोंमेंसे गुजरे हैं। अभी कुछ समय पहले वे श्रीअरविन्द और श्रीमाताजी के चरणोंमें श्रद्धाँजलि अर्पित करने यहाँ आये थे।

पंडितजीका सारा जीवन वेदोंके अध्ययन और प्रचारमें ही लगा है। वे सुनाया करते थे कि एक विद्वान सौ वर्षतक वेदका अध्ययन करता रहा, जब उसका अंत समय आया तब इन्द्रने कहा, "वत्स ! मैं तुम्हें और सौ वर्षका आयुष्य देता हूँ। बोलो, इन सौ वर्षोंमें क्या करोगे ?" "वेदाध्ययन" चटसे जवाब मिल गया, "इसमें भी कोई सोचनेकी बात थी भला !" इसी प्रकार तीन बार हुआ और तीनों बार उसे वेदाध्ययनके लिए सौ-सौ वर्ष मिलते गये। अंतमें उसने कहा—अब मैं वेदका अर्थ कुछ-कुछ समझने लगा हूँ। इसी प्रकार पंडितजी भी कहा करते थे कि वेदका अर्थ समझनेका प्रयास कर रहा हूँ। वे आखिर कोई मानसिक या बौद्धिक पुस्तक तो है नहीं, यहाँ तो जैसे श्रीमाताजी ने किसी और प्रसंगमें कहा था—घोषणा मत करो, अनुभव करो 'Do not announce, realize' प्राप्त करनेकी बात है। वेदके कुछ मंत्रोंपर श्रीअरविन्दने जो टीका की है, उनके अन्तरतम रहस्यको साधारण मनुष्यकी भाषामें रखनेका जो

प्रयास किया है, उनके गुह्य आध्यात्मिक मोतियोंको सर्वसुलभ बनानेकी जो कोशिश की है उसपर पंडितजी मुग्ध थे और अन्तिम दिनोंमें श्रीअरविन्दकी शैलीका अध्ययन करनेमें लगे थे। इतने बड़े विद्वानोंमें इतनी नम्रता जरा मुश्किलसे ही दिखायी देगी।

श्रीअरविन्दाश्रममें, जात-पांत, ऊंच-नीच, देशी-विदेशी या स्त्री पुरुषके भावोंको कोई स्थान नहीं मिलता। हो सकता है आप जिसके पास बैठकर भोजन कर रहे हों, वह यहाँ आनेसे पहले एक चमार रहा हो, संभव है कि आपके कमरेमें रहने वाला बड़ा कट्टर ब्राह्मण रहा हो। संभव है कि आपके सामनेके बगीचे में सूखे पत्ते तोड़ता हुआ मनुष्य कहींपर बड़ा सेठ रह चुका हो। यहाँके लोग एक-दूसरे के बारेमें न तो ये सब बातें जानते ही हैं और न जाननेकी परवाह ही करते हैं—"जात-पाँत पूछे नाहि कोई, हरिको भजे सो हरिको होई।" एक बार स्वयं गाँधीजीने कहा था, "मैं छुआछूतकी समस्याको हल करनेके लिए इतना प्रयास कर रहा हूँ फिर भी कठिनाइयाँ कम नहीं होतीं। तुम्हारे आश्रममें माताजीने न जाने क्या कर दिया है कि यह प्रश्न ही नहीं उठता।"

खैर, यह जात-पाँत आदिकी बात तो समझमें आ जाती है पर आश्रममें, विद्यालयमें, क्रीड़ाँगण सभी जगहपर लड़के-लड़कियाँ बिना किसी भेद-भावके मिलते रहते हैं और सह-शिक्षणसे उत्पन्न होनेवाली समस्याएँ यहाँ समस्याका रूप धारण नहीं करतीं। यह चीज बहुतोंको खटकती है। जिन्हें शहरोंके कालेजों का अनुभव है वे कुछ आश्चर्यके साथ पूछते हैं यह क्या? योगाश्रममें कामिनी-कांचनका बहिष्कार क्यों नहीं? पं० सातवलेकरजीकी मर्मभेदी आँखोंके सामने भी यह चीज आयी। उन्होंने कहा—इस आश्रमकी एक चीज मुझे बहुत ही पसंद आयी, जानते हो क्या? मैंने जरा उत्सुकतासे पूछा, वह कौन-

सी ? पंडितजीने कहा, यहाँपर माताजी स्त्री-पुरुषका भेद नहीं करतीं। इसके पीछे मुझे एक बहुत बड़ी चीज दिखायी दे रही है। मुझे लगता है कि माताजी यहाँपर शुद्ध आध्यात्मिक समाज जकी स्थापना कर रही हैं। वेदमें बताया गया है कि आत्मामें स्त्री-पुरुष, कुमार-कुमारी, बाल-वृद्ध आदिके भेद नहीं होते। मुझे दिखायी दे रहा है कि माताजी यहाँपर ऐसा समाज बनाना चाहती हैं जहाँ आत्माका आत्माके साथ मिलन हो, जहाँ यह सवाल ही न पैदा हो कि वह आत्मा स्त्रीका चोला धारण किए हुए है या पुरुषका। हो सकता है कि छिद्रान्वेषी इसमें कुछ त्रुटियाँ दिखायें, मैं भी यह नहीं कह रहा कि यह चीज पूर्ण रूपसे सिद्ध हो चुकी है, परंतु प्रयास उसी दिशामें है, जिस दिशामें वेदने अंगुलि-निर्देश किया था, उस ओर माताजी सफलता प्राप्त करके रहेंगी।

आश्रममें एक विभाग है जो आश्रमवासियोंकी विभिन्न-प्रकारकी आवश्यकताओंको पूरा करता है। तेल, साबुन, कपड़े-लत्ते आदि वस्तुएं वहींसे मिलती हैं। उसका नाम है 'Prosperity' (प्रॉस्पेरिटी)। पं० सातवलेकरजी उसे देखने गये तो खुशीसे उछल पड़े। बोले, यहां है सच्ची आध्यात्मिकता। वेदमें कहीं भी तथाकथित संन्यास-मार्गका उपदेश नहीं दिया गया। हम हमेशा ऐसी प्रार्थनाएं देखते हैं कि भगवान् हमें घोड़े दें, गौएं दे, समृद्धि दें, बल दें और ओज दें। कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि भगवान् हमें गरीब बना दें, हम भूखे मरें, हमारे पास कपड़े न हों। हम पेड़के नीचे पड़े रहें। पार्थिव तत्वका बहिष्कार, समृद्धिका बहिष्कार और जगत्से मुंह मोड़कर परलोकका चिंतन वैदिक चीज नहीं है। वैदिक कालमें जनक जैसे आध्यात्मिक राजा राज्य करते थे, वसिष्ठ जैसे ऋषि राजाके पास रहकर सलाह दिया करते थे। वे संसार छोड़कर जंगलमें नहीं भागते थे। ये सब चीजें तो भारतकी

अधोगतिके जमानेकी हैं। आज मैं देखता हूँ कि माताजी भी तुम लोगोंको क्रियात्मक रूपसे prosperity का उपदेश दे रही हैं austerty का नहीं। माताजी पार्थिव जगत्का बहिष्कार नहीं करतीं, उसे अध्यात्मके राज्यमें रखना चाहती है, उसका भी रूपान्तर करना चाहती हैं। जीता-जागता वैदिक युग यहींपर जन्म ले रहा है। यहां किसी भी वस्तुका निरादर नहीं होगा, हरएक चीज अपने सच्चे रूपमें और ठीक स्थानपर रहेगी।

पंडितजी हमारा क्रीड़ांगण देखने गये। सामान्यतः कोई यह आशा नहीं करेगा कि तिरानवे वर्षका एक पंडित खेल-कूदमें रस ले सकता है। पर यह पंडित किसी और ही मिट्टीका बना था। उन्होंने देखा कि लड़कियां लड़कोंके साथ कंधा भिड़ाये कूद-फांद कर रही हैं और सब तरहके खेलोंमें भाग ले रही हैं। पंडितजीने कहा—वैदिक कालके बाद भारतका जो पतन हुआ उसके दो बड़े कारण ये हैं कि भारतवासियोंने इहलोकसे मुंह मोड़कर परलोककी ओर ताकना शुरू किया, परिश्रम करनेकी जगह भाग्यको कोसना शुरू किया और समाजके आधे अंगको, स्त्रियोंको, पंगु बना दिया।

कैसे खेदकी बात है! जिस देशने स्वयं शक्तिकी स्त्रीके रूप में कल्पना की, जिस देशने अपने पुराणोंमें देवोंको तो छः और आठसे अधिक भुजाएं नहीं दीं पर देवीमें एक सौ आठ भुजाओं के दर्शन किये, उसी देशने स्त्रीका अपमान किया, उसे वेद पढ़नेका अधिकारी भी नहीं छोड़ा और केवल घरकी चारदीवारीमें बंद कर पाचन और प्रजननके काममें लगा दिया। ये दो बहुत बड़े कारण हैं जिनसे भारतका पतन हुआ। मैं न जाने कबसे यह प्रार्थना कर रहा था कि प्रभो! फिरसे भारतकी नारीका अभ्युत्थान हो, फिरसे वह अपना उचित स्थान पा सके। आजकल समाजमें जो हो रहा है मैं उसे नारीकी प्रगति नहीं

मानता। सच्ची प्रगति देखनी हो तो यहां देखो। माताजीने नारीको ऊपर उठानेका बीड़ा उठाया है और मैं फिरसे यही कहूंगा कि, यहां मुझे वैदिक आदर्श चरितार्थ होते दिखायी दे रहे हैं। मुझे मालूम नहीं था कि मैं जिन चीजोंके लिए अनवरत प्रार्थना कर रहा था वे धरतीपर प्रकट हो चुकी हैं। सचमुच माताजीकी बड़ी कृपा है।

एक घटना और। पंडितजी माताजीकी एक पुस्तक देख रहे थे। उसमें लिखा था कि मनुष्य वर्षोंकी गिनतीके आधारपर बूढ़ा या जवान नहीं कहला सकता, जो प्रगति करता रहे वही जवान है और जो टिककर बैठ गया वही बूढ़ा है (कुछ ऐसा ही भाव है, शब्द तो इस समय याद नहीं)। पंडितजी बोले कितनी सच्ची बात कही है! वैदिक शास्त्रोंके अनुसार एक सौ सोलह या बीसके बाद वृद्धावस्था आनेका साहस कर सकती है। उससे पहले मृत्यु भी आ जाय तो साधक कह सकता है कि मेरा जीवन यज्ञ है, मैं अभी आहुतियां दे रहा हूं, मुझे मरनेकी फुरसत ही नहीं है, और इस उत्तरको सुनकर स्वयं मृत्युको भी उलटे पैरों वापिस जाना पड़ेगा।

पर हां, यह संभव तभी होगा जब सारा जीवन यज्ञमय हो। पंडितजीने बताया कि महाभारतमें केवल भीष्म पितामहको वृद्ध माना गया है और वे एक सौ सत्तरसे ऊपरके थे। इतनी दूरकी बात छोड़ें, अभी कोई बारह-चौदह सौ वर्ष पहले जो चीनी और यूनानी यात्री भारतमें आये थे उन्होंने लिखा है कि एक सौ चालीस वर्षके लोग यहांपर गलियोंमें घूमते हुए मिला करते थे। माताजीने जो कहा है वह पूर्ण रूपसे सत्य है।

८

पत्र लेखक श्रीअरविन्द

श्रीअरविन्दने हजारों पत्र लिखे होंगे। इनमेंसे बहुतसे छप चुके हैं और बाकी कहीं इधर उधर छिपे होंगे। कई वर्षों तक श्रीअरविन्द रोज आठ दस घंटे पत्र लिखनेमें बिताया करते थे। इन पत्रोंमें दर्शन है, साहित्य है, कविताओंका संशोधन है और हर व्यक्तिकी परिस्थितिके अनुसार सलाह है। कहीं गम्भीरता भरी भाषा है तो कहीं हास्यपूर्ण, उन्होंने कहीं अध्यापक बनकर सहानुभूतिके साथ भूल सुधारी है और कहीं व्यंग्यपूर्ण भाषामें चपत लगाया है। हर व्यक्तिके साथ व्यक्तिगत सम्बन्धके और विषयके आधारपर शैली भी बदलती है। योगके आधार, योग प्रदीप, इस जगत्‌की पहेली आदि पुस्तकें श्रीअरविन्दके पत्रोंके संकलन हैं। यहां हम नमूनेके लिए दो चार पत्र दे रहे हैं।

एक शिष्यने कविता लिखना शुरू किया। उसने शिकायत की, मुझे लिखनेमें बहुत समय लगता है और बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता है। श्रीअरविन्द उत्तर देते हैं "इससे क्या हुआ ? परिणाम ठीक ही है। 'क' दिनमें दस बारह या इससे भी अधिक कविताएं लिख लेता था। सामान्यतः मुझे एक कविता लिखने और उसे ठीक करनेमें एक या दो दिन लग जाते हैं। और कभी बहुत प्रेरणा आ गयी तो दिनमें दो कवि-

ताएं लिख लेता हूँ और फिर दूसरे दिन उन्हें दोहराता हूँ। कोई और कवि वर्जिलकी तरह हो सकता है जो दिनमें नौ पंक्तियां और इधर उधरके टुकड़े लिख लेता था और फिर दो सप्ताहसे दो महीने तक उन्हें ठीक करनेमें लगाता था। इसकी परवाह न करो कि कितना समय लगता है। कार्यकी पूर्ति और उसकी अच्छाईका ही महत्व है। निशिकान्तकी आश्चर्यजनक तेजी देखकर हिम्मत न हारो।"

अपना मार्ग ढूंढते हुए नये कविके लिए कितना बड़ा प्रोत्साहन है। किसीने मानव प्रेमके बारेमें पूछा तो श्रीअरविन्द उत्तर देते हैं :

मानव प्रेमपर भरोसा नहीं किया जा सकता वह स्वार्थ-परता और कामनाओंके आधारपर खड़ा होता है। वह अहंकी ज्वाला है जो कभी धूमिल होती है तो कभी चमकदार और रंगीन। कभी उसका आधार तामसिक अंध प्रेरणाओं और आदतों से बनता है तो कभी राजसिक तत्वोंसे, जिनमें आवेगों और आवेशोंको झोंका जाता है या फिर वह प्राणगत आदान प्रदानकी भित्तिपर खड़ा होता है। हां, कभी कुछ सात्विक-सा रूप भी होता है जो अधिक निष्काम दिखायी देनेका प्रयत्न करता है। मूलरूपसे यह किसी व्यक्तिगत आवश्यकता या किसी आन्तरिक या बाह्य बदलेपर आधारित होता है और जब आवश्यकता पूरी नहीं होती या बदला नहीं मिलता तो सन्तोष कम हो जाता है या खतम हो जाता है और रहा भी तो पुरानी आदतके अवशेषके रूपमें रह जाता है। इसमें जितनी उग्रता होती है उतने ही रगड़े झगड़े, अहंके दावे होते हैं। क्रोध, घृणा और सम्बन्ध विच्छेद तककी नौबत आ जाती है। मैं यह नहीं कहता कि इस प्रकारका प्रेम टिक ही नहीं सकता। सहज तामसिक प्रेम जैसे कई पारिवारिक सम्बन्ध—एक आदतके कारण सब तरहका विरोध होते हुए भी चलता जाता है। राजसिक

प्रेम हर तरहकी बाधाओं, विरोधों और आवेशमय प्रस्फुटनके होते हुए भी बने रहते हैं क्योंकि दोमेंसे किसी एकको या दोनोंको अपने प्राणके सन्तोषके लिए दूसरेकी जरूरत होती है और इसलिए दोनों ही चिपटे रहते हैं। उनके जीवनमें झगड़े और समझौतेके चक्र चलते रहते हैं। सात्विक प्रेम कर्तव्य या आदर्श या ऐसी ही किसी दृष्टिसे बना रह सकता है। लेकिन प्रेममें सच्ची प्रामाणिकता तभी आ सकती है जब उसमें अन्तरात्माका तत्व हो।

आश्रमसे एक विलक्षण कहानेवाला व्यक्ति चला गया। एक सज्जनने इसके बारेमें श्रीअरविन्दको लिखा। गुरुका उत्तर आया "उहं, एक सच्चा हृदय सारे संसारकी विलक्षण शक्तियोंसे अधिक मूल्यवान है।" इसी बारेमें फिर एक बार कहते हैं अपने आपको आध्यात्मिकताका केन्द्र कहनेवाली संस्थाकी प्रतिष्ठा उसकी आध्यात्मिकतामें है, बड़े आदमियों या अखबारोंके स्तम्भोंमें नहीं।...अगर हम प्रशंसा या निन्दाकी परवाह करते तो हमें आध्यात्मिकताको विदा कर देना पड़ता। मैं और माताजी कभीके पिस चुके होते। यह तो अभी हालमें ही आश्रमको कुछ प्रतिष्ठा मिलनी शुरू हुई है, इससे पहले तो वह हमेशा कड़ी आलोचनाका लक्ष्य बना रहता था। और जो गन्दी भद्दी बातें फैलायी जाती थीं उनका तो कहना ही क्या है।

श्रीअरविन्दसे हर तरहकी बात निस्संकोच पूछी जा सकती थी। किसीने पूछा आध्यात्मिक लोग शादी क्यों करते हैं? बुद्ध, कनफ्यूशियस और आपने शादी की और फिर घर-बार छोड़ दिया—यह बात समझमें नहीं आती। श्रीअरविन्द उत्तर देते हैं यह तो स्वाभाविक है। जब वे साधारण चेतनामें थे तो साधारण जीवन बिताते थे। जब आन्तरिक जागृति और नयी चेतना आयी तो साधारण जीवनको छोड़ दिया—विवाह आदि पुराने जीवनकी बातें हो गयीं।

किसीने पूछा मच्छर, खटमल, सांप, बिच्छू आदिको स्वरक्षा के लिए मारना ठीक है या नहीं ? श्रीअरविन्दने लिखा—जरूर, यों तो कीटाणुनाशक हर दवाई और धुएंके विरुद्ध भी आपत्ति की जा सकती है। शिष्यने पूछा, और मूक प्राणियोंकी बलि— श्रीअरविन्दने लिखा वह बेकार और अवांछनीय है। जैसा कई सन्तोंने कहा है यह निरर्थक है, इसलिए कालीके आगे अहंकार, क्रोध, काम आदिकी बलि दो, मुरगों और बकरोंकी नहीं।··· यज्ञ हमेशा आन्तरिक वृत्तिपर निर्भर होता है यदि आहुति देनेके लिए तुम्हारे पास कुछ नहीं है तो अपने आपको तो हमेशा दिया ही जा सकता है।

शिष्य लिखता है "मेरे मित्र अपनी कमजोरियोंके कारण निराश हो रहे हैं उन्हें आत्महत्याके विचार आ रहे हैं। मैं आपकी ओरसे उन्हें क्या लिखूं ?"

श्रीअरविन्द—'निराशा बेकार बात है और आत्महत्या बिलकुल अनुचित। आदमी चाहे कितनी भी ठोकरें खाये, यदि वह भगवानसे अभीप्सा करे तो उनकी कृपा हमेशा उसके साथ रहेगी और मुश्किलोंमेंसे उबार लेगी।'

अपने एक और पत्रमें निराश होते हुए शिष्यसे श्रीअरविन्द कहते हैं "मुझे विश्वास है कि हर एक ऐसे व्यक्तिके, जिसमें डटे रहनेका धैर्य है और कोई मौलिक और अपने आपको दूर हटाने वाली दुष्टता नहीं है, एक न एक दिन नीलचन्द्र* अवश्य उदय होगा। और इस प्रकारकी दुष्टतावालोंमें भी यदि एक बार भी उन्होंने उसकी चाह की है तो एक दिन, भले ही देर क्यों न हो, नीलचन्द्र जरूर प्रकट होगा।"

कितना बड़ा आश्वासन है ! हम सबके लिए !

---

* नीलचन्द्रसे यहाँपर "आध्यात्मिक सौभाग्य" समझा जा सकता है।

९

श्रीअरविन्द और काव्य

साधारण मनुष्य कविताको एक मनोरंजनकी वस्तु मानता है। समय काटनेके लिए जहाँ बहुत प्रकारके विनोद हैं वहाँ कविता भी है। उसके लिए शब्दोंका कर्णप्रिय जोड़-तोड़, प्रभावशाली वाक्य-विन्यास और हल्की-सी लय हो, मनको लुभाने वाले या भावनाओंको उत्तेजित करनेवाले छन्द हों तो बस उसे और कुछ नहीं चाहिये। उसकी दृष्टिमें चीनको ललकारनेवाले छन्द, प्रियाके विरहमें विलापसे भरे छन्द अथवा मकानके सामनेसे जाती हुई गोपबालाके वर्णनमें लिखे छन्द, बड़ी अच्छी कविताका प्रतिनिधित्व करते हैं। इस दृष्टिसे देखें तो 'जय जगदीश हरे' 'झंडा ऊंचा रहे हमारा', तथा कामायनी शायद एक ही स्तरपर आ जायें बल्कि हो सकता है कि साधारण पाठक कामायनीको दुरुह कहकर एक ओर रख दे तथा 'हुआ सवेरा जागो भैया' का पाठ करने लगे। इसीतरह कई बार साधारण ग्राम गीतोंको रामायण और महाभारतसे ऊंचा स्थान मिल सकता है।

कवितासे हम आनन्दकी मांग तो करते हैं पर वह कानोंका, बुद्धिका अथवा कल्पनाशक्तिका सुख नहीं है। क्योंकि कान, कल्पना या बुद्धि सच्चे रूपमें काव्यका आनन्द लेनेवाले

नहीं हैं। काव्यका सच्चा आनन्द लेना तो हमारी आत्मा का काम है। कान आदि तो केवल उसके परिवहन का काम करते हैं और इनका काम इतना ही है कि अपनी ओरसे कुछ घटाये बढ़ाये बिना काव्यको उसके स्रोत आत्मा तक पहुँचा दें। हम कह सकते हैं कि काव्यने जबतक सामान्य इन्द्रिय-सुख एवं बुद्धि-विलासको एक उच्चतर आध्यात्मिक आनन्दमें परिवर्तित नहीं कर दिया तबतक उसने अपना काम पूरा नहीं किया।

जिन दिनों भारतपर चीनका आक्रमण हुआ था उन दिनों बहुतसी जोशीली पंक्तियां लिखी गयी थीं जो सुननेवालोंके अन्दर एक क्षणिक आवेश पैदा करनेमें, कुछ समयके लिए मरे हुओंमें भी प्राण फूंकनेमें सफल होती थीं। परन्तु उन्हीं पंक्तियोंको उस वातावरणसे हटाकर देखा जाये तो उनमें बहुत जान नहीं मालूम पड़ती। जैसे :

सागर गरजे धरती कंपे, पर्वत बोले रे।
वज्र फेंकता बढ़ा सिपाही जय जय बोले रे,
प्रेम क्षीरमें वैर गरल ला किसने घोले रे,
सागर गरजे धरती कंपे पर्वत डोले रे।

अथवा

हिंस्र नेत्र फोड़ दो, कि पातकी टिके नहीं,
बढ़े कदम रुके नहीं, तनी ध्वजा झुके नहीं॥

या इसी तरह 'ऐ मेरे वतनके लोगो, जरा आखोंमें भर लो पानी' आदि पंक्तियां अपने समयपर बड़ा अच्छा काम कर गयीं पर वे सचमुच कविता तो नहीं कहला सकतीं। वे अधिकसे अधिक हमारे प्राणतक ही पहुँच पातीं हैं और उनका कोई स्थायी मूल्य नहीं हो सकता।

सच्ची कविता तो प्रतिभासे उत्पन्न होती है। कई आचार्योंका मत है कि प्रतिभा शिवका तीसरा नेत्र है।

श्रीअरविन्दका कहना है कि सच्ची कविता हमेशा चेतनाके

किसी सूक्ष्म स्तरसे आया करती है । सर्जनात्मक प्राण उसका वाहक है और हमारा बाह्य मन उसको व्यक्त करनेका उपकरण । काव्य-सृजनमें तीन मुख्य तत्व होते हैं : १. प्रेरणाका असली स्रोत, २. सौन्दर्यकी सृजनात्मक प्राणशक्ति जो काव्यको वस्तु और छन्द देती है, ३. उसे व्यक्त करनेवाली बाह्य चेतना या मन । जब प्राणशक्ति बहुत बलवान होती है तो वह प्रेरणाको अपने रंगमें रंग लेती है और कवितामें एक तूफानी वेग आ जाता है, जिसके कारण कवितामें शक्ति तो होती है परन्तु असली तत्व निम्नकोटिका रह जाता है। इसी प्रकार यदि बाह्य चेतना ज्यादा सबल होकर प्रेरणापर अपने कानून कायदे लगाने लगे अथवा अपने प्रमादके कारण प्रेरणा का ठीक उपकरण न बने तो कविता एकदम असफल हो जाती है। सबसे अच्छी कविता तब होती है जब कविका प्राण और उसकी बाह्य चेतना बिना किसी ननु नचके प्रेरणाका वहन करें और उसपर किसी तरह भी अपना रंग चढ़ानेकी कोशिश न करे। ऐसी कविता बड़े कवि भी बिरले क्षणोंमें ही लिख पाते हैं।

मंत्र इससे भी ऊपरका काव्य है । उसकी प्रेरणा मनसे ऊपरके अधिमानससे आती है । उसकी भाषा बहुत अधिक गम्भीर और सारगर्भित होती है। उसका अर्थ उसके वाहक शब्दों की अपेक्षा बहुत अधिक विस्तृत और गम्भीर होता है। उसके लय तथा छन्दमें शब्दोंसे भी अधिक शक्ति होती है। उसका मूल चेतनाके किसी ऐसे स्तरमें होता है जो हमारी ऊपरी चेतनाको पीछेसे सहारा दिये रहती है। परन्तु इतनी ऊंचाईपर पहुँचना बहुत ही असाधारण बात है क्योंकि इसके लिए जरूरी है कि मनुष्य या कमसे कम उसकी चेतनाका कोई भाग साधारण मन की उड़ानसे बहुत ऊंचा उड़ सके।

कुछ आधुनिक कवियोंमें अन्तरात्मासे आती हुई प्रेरणा दिखायी देती है, कुछमें विस्तृत मन और विश्वात्माका स्पर्श

होता है परन्तु सच्ची कविता तो तब होगी जब आत्माकी ज्योति आनन्द, जीवनकी विस्तृत प्राण-शक्ति और बहुलता एक साथ हों। धरती और आकाशके तत्व मिलकर काव्यका उच्चरण करें। श्रीअरविन्दका कहना है कि सम्भवतः पूर्वमें और पूर्वकी ही किसी भाषामें सबसे पहले यह पूर्णता प्रकट होगी क्योंकि स्वभावतः पूर्ववाले आत्मा और अन्तरात्माकी दृष्टिके अधिक निकट रहे हैं। यह दृष्टि यदि अपनी अस्वाभाविक सीमाओंमें न रहकर मानव जीवनके समस्त क्षेत्रको प्रकाशित कर सके तो हमें सचमुच आदर्श कविता मिल सके।

इसके विपरीत पश्चिमवाले अभी इस दिशामें उठ ही रहे हैं लेकिन इस समय उनके विचारमें विशालता और विस्तार अधिक है, बहिर्मुख होते हुए भी सत्यकी खोजके लिए प्रयत्न शील हैं और वे अपनी पूरी शक्ति लगाकर उसे पाना चाहते हैं। यदि वे एक बार ठीक रास्तेपर आ जायें तो उनका काम काफी सरल होगा क्योंकि वे प्राचीन परिपाटियोंसे घिरे हुए नहीं हैं उनकी अभिव्यक्तिमें ज्यादा आजादी होगी।

श्रीअरविन्दके शब्दों में "पूर्व और पश्चिमकी मनोवृत्तियोंकी टक्कर हो रही है, जिसमें एक ओर विशाल आध्यात्मिक मन और अन्दरकी आँखें हैं जो आत्मा और शाश्वत सत्यको देखती हैं और दूसरी ओर विचारकी स्वाधीनतापूर्वक खोज, धरती पर व्यापक समस्याओंके साथ टक्कर लेनेवाली हिम्मत और साहस है। इस टक्करसे ही भविष्यकी कविता पैदा होगी। मनुष्य और केवल मनुष्य ही नहीं सारी प्रकृतिमें व्याप्त जीवन को अर्न्तदृष्टिसे देख, सुन और समझकर, मनुष्य और इस विशाल जगत्के सच्चे "स्व" को पहचानने और उसके केवल बाहरी नहीं बल्कि उसकी गहराइयोंसे सत्यको जानकर मनुष्य और जगत्की सम्भावनाओंके अन्दर भगवानकी वास्तविकता के दर्शन करनेका प्रयास हो रहा है। हम सब जाने-अनजाने

इसी दिशामें चल रहे हैं। भविष्यकी कविता इस सत्यको व्यक्त करनेके लिए प्रेरणादायक सुन्दर कलात्मक रूप और उसके अनुरूप भाषा देगी।

श्रीअरविन्दका महान काव्य 'सावित्री' इस दिशामें पथ-प्रदर्शन करता है। सारा विश्व ही सावित्रीका फलक है। सावित्रीका जीवन एक अमर आत्माकी यात्रा है जो मर्त्य लोककी पुकार सुनकर धरतीपर प्रकट हुई ताकि उसकी अपूर्णताओंको पूर्ण करे। सत्यवान मनुष्यके भाग्यको लेकर चलता है। दृष्ट और अदृष्ट जगत्की सारी कठिनाइयां उसके मार्गमें बाधा डालती हैं। भागवत करुणाकी शक्ति मानव शरीर धारण करके सावित्रीके रूपमें प्रकट होती है और मानव जीवन के प्रत्येक पहलूको छूती हुई, हर अंधेरे कोनेको आलोकित करती हुई ऊपर उठती है। मार्गमें उसे अनेक लोकोंकी यात्रा करनी पड़ती है जिनसे हम अभीतक अपरिचित हैं। इनसे होती वह ऊंचेसे ऊंचे शिखरोंपर जा पहुँचती है। हम कह सकते हैं सावित्री मनुष्यके वर्तमान और उसकी भावी सम्भाव-नाओं और उसके जीवनके लक्ष्यका अद्भुत भाषामें चित्रण है। सावित्री मानव जीवनको आशाका सन्देश देती है और उसके आरोहणमें उसका पथ-प्रदर्शन करती है। सावित्रीमें जिन क्षेत्रोंका चित्रण किया गया है उन्हें सामान्य मनुष्य अपनी साधारण दृष्टिसे नहीं देख पाता। उसे भली-भांति समझनेके लिए आधुनिक विज्ञान और प्राचीन आध्यात्मिक परिचय सहायक हो सकता है। परन्तु एक बार सच्चे दिलसे प्रयास किया जाये तो सावित्री अपने रहस्य खोलने लगती है और पाठकको निहाल कर देती है। सावित्री उस महान स्थापत्यकी न्याईं है जिसमें हर छोटीसे छोटी चीज महत्वपूर्ण है, जिसमें सौन्दर्य पूर्ण रूपसे मूर्तिमान हो उठता है।

लेकिन सावित्रीको सामान्य पुस्तककी तरह पढ़ जानेवाले

उससे भलीभाँति परिचय नहीं पा सकते। उसके लिए कुछ प्रयास करना होता है। श्री माताजीने कहा है कि सावित्री पढ़नेका सबसे अच्छा ढंग यह है कि आदमी शान्त मनसे कुछ अंश पढ़े और फिर कुछ देर चुपचाप बैठा रहे—इसमें समझने का प्रयास भी न हो। कुछ कालतक इसतरह नियमित रूपसे पढ़नेसे सावित्री अपने आप समझमें आने लगती है। हां, पूरी तरह समझनेके लिए तो पूरी अनुभूति आवश्यक है जो अभी दूरकी चीज है।

सावित्री तो महाकाव्य है। उसके अतिरिक्त श्रीअरविन्दने बहुतसी छोटी-बड़ी कविताएं लिखी हैं। जिनका परिचय देनेके लिए यहां स्थान नहीं है। फिर भी नीरज द्वारा अनूदित दो छोटी-छोटी कविताओंका रसास्वादन शायद अप्रासंगिक न हो।

वृक्ष और आत्मा

स्वर्गानुरक्त, सैकत-तटपर तरु खड़ा एक
नभ ओर भुजाओं-सी शाखाएं फैलाता।
हो विफल किन्तु जड़ धरतीके आकर्षणसे
ऊपर न मृत्तिकाकी मायासे उठ पाता।
यह है आत्मा, मानवस्वरूप जिसकी शाश्वत स्वर्गिक उड़ान
हैं नीचे रोके हुए खड़े, रजपाश-बद्ध मन, देह, प्राण।

विजय गीत

मैं न मरूंगा।
जब आत्मा इस मर्त्य गेहसे थक जायेगी,
और चिताकी लपटोंका भोजन होगा तन,
पर तब तो यह भवन जलेगा, किन्तु नहीं मैं!
उस पिंजड़ेको छोड़ मिलेगा मुझे विशाल व्योमका कोना,
क्रूर मरणके आलिंगनको धोखा देकर मेरी आत्मा,
दूर बहुत हो जायेगी भूखी कब्रोंसे।

रात्रि सूर्यको अपनी ठंडी गहराईमें छिपा रखेगी,
निश्चय होगा अन्त कालका,
नित्य परिश्रम करनेवाले तारोंको भी मुक्ति मिलेगी,
लेकिन अन्त न मेरा होगा,
अन्तहीन मैं सदा रहा हूं।
सदा रहूंगा !
प्रथम सृष्टिका बीज गिरा था जब धरतीपर,
उससे भी पहले जीकर मैं वृद्ध हुआ था,
और कि अब जब ठंडे हो जायेंगे सब नक्षत्र अजन्मे,
तब भी मेरी कथा चलेगी सृष्टि-पृष्ठपर !
मैं हूं तारोंका प्रकाश,
सिंहोंका बल,
सुख ऊषाओंका,
मैं हूं पुरुष, प्रकृति औ' बालक,
मैं असीम हूं, मैं अनादि हूं, मैं अनन्त हूं !
एक वृक्षमें
जो एकाकी खड़ा हुआ इस महाकाशमें,
तुहिन बिन्दुसा मौन पातमें,
मैं अपार सागर जीवनका !
आकाशोंको हाथ उठाये,
सृष्टि-प्राण धरतीका मैं पालन करता हूं,
एक चिरंतन चिन्तक था मैं जन्म समय भी
और रहूंगा···
मैं असीम हूं, मैं अनन्त हूं।

१०

श्रीअरविन्दका योग

भारतमें चिरकालसे लोग योग-साधना करते आये हैं। परन्तु श्रीअरविन्दका योग उन योग पद्धतियोंसे कई बातोंमें अलग है। श्रीअरविन्द प्राचीन प्राप्तियोंका विरोध नहीं करते, उनका विरोध कोई कर ही कैसे सकता है। वे हर प्राचीन बातसे चिपके रहनेके विरोधी हैं। वे यह नहीं चाहते कि प्राचीन चीजको ही चरम लक्ष्य माना जाये। सृष्टिमें विकास हो रहा है, आध्यात्म मार्ग ही क्यों पीछे ताकता रहे। हमारे योगका लक्ष्य भी आगे बढ़ता जाता है। श्रीअरविन्द कहते हैं कि हमारी सारी सत्ताको, हमारे मन, प्राण, शरीर तकको अपनी सारी शक्ति इस बातपर केन्द्रित करनी चाहिये कि हम भगवान्‌के कामके लिए योग्य बन सकें। हमारा मन अंधेरेमें टटोलने वाला अस्तव्यस्त राहगीर न रहकर अपनेसे ऊपरकी शक्ति का वाहक बने, हमारा प्राण आजकी तरह तुच्छ स्वार्थी, आवेशों और इच्छाओंका भण्डार न होकर शान्त सुस्थिर ऊर्जाको लाने वाला बने, यह शरीर भी आजकी तरह मिट्टीका न रहकर भगवानका सचेतन और प्रकाशमय सेवक बन सके।

श्रीअरविन्द अपने योग मार्गके लिए कोई निश्चित क्रियाएं नहीं बताते। हर-एककी साधनाका अपना अलग मार्ग होगा।

श्रीअरविन्दके अनुयायीका सारा जीवन ही योग होना चाहिये। उन्हें कुछ घण्टे योगके लिए और कुछ घंटे भोगके लिए रखना स्वीकार नहीं है।

जो लोग योग-साधना करना चाहते हैं उनके लिए यहां कुछ शब्द उद्धृत किये जा रहे हैं। साधक किसी भी चीजको लेकर आरम्भ कर सकता है। एक चीजसे दूसरीका रास्ता अपने आप खुलता जाता है और सच्ची पुकार होनेपर भगवती माता हर-एककी उंगली पकड़कर उसे लक्ष्यकी ओर ले जाती है।

दिलकी सचाई—योगके लिए एक चीज अनिवार्य है—यह है दिलकी सचाई।

जो भगवान्‌के दरवाजेपर खटखटाता है—फिर चाहे उसने अपने जीवनमें कितनी भूलें की हों या ठोकरें खायी हों—उसके लिए भगवान्‌के द्वार हमेशा खुले रहते हैं।

शान्त रहो, अपने आपको दिव्य शक्तिकी ओर खोलो और उससे प्रार्थना करो कि वह तुम्हारे अन्दर अचंचलता और शान्ति स्थापित करे। तुम्हारी चेतनाका विस्तार करे और तुम्हारे अन्दर भगवान्‌की ज्योति और शक्ति ले आये।

जब सब कुछ ठीक-ठीक चल रहा है तब शान्त रहना आसान है व तुम्हारी शान्ति, नीरवता और समताकी परीक्षा तो तब होती है जब परिस्थितियाँ उलटी हों।

अपने आपको खोलना, इस योगमें अपने आपको भगवान्‌के प्रभावके प्रति खोलना बहुत जरूरी है। यों तो वह हर जगह मौजूद है परन्तु उसके लिए सचेतन होना जरूरी है फिर उसे अपने अन्दर लाना जरूरी है। इसके लिए अभीप्सा करो, प्रार्थना करो, भगवानको अपने अन्दर बुलाओ। तुम्हें जब जो तरीका अच्छा लगे उसका उपयोग करो। कभी अधीर न बनो। यह सारा काम एक दिनमें नहीं हुआ करता।

आत्म-समर्पण—अपने आपको पूरी तरह भगवान्के हाथोंमें सौंप दो, उससे किसी प्रकारकी मांग किये बिना, किसी बदलेकी चाह किये बिना उसके बन जाओ। समर्पण बहुत आसान नहीं है। यह धीरे-धीरे ही पूरा हो सकता है। इसके लिए भगवान्की कृपा और उसकी सहायता जरूरी है।

मांग और इच्छा एक ही चीजके दो रूप हैं। इन्हें अपना मत समझो, इनके आगे झुकना इनके वेगको बढ़ाता है। जब यह सिर उठाने लगे तो इन्हें भगवान्के हाथमें सौंपनेकी कोशिश करो, इनसे पिण्ड छुड़ानेका यही सबसे सरल उपाय है।

भोजनके लिए आसक्ति बुरी है। उसे जीवनमें बहुत अधिक महत्व न दो। किसी भोजनके अच्छे लगने या न लगनेमें कोई हर्ज नहीं है। हां, उसके लिए लार न टपकाओ, उसके मिलनेसे बहुत खुश और न मिलनेसे नाखुश न होओ। शरीरके लिए जितना खाना जरूरी है उतना खाओ, न कम न ज्यादा। भोजन के लिए न तो लालसा हो, न घृणा। जो मिले उसे भगवान्की एक देन समझकर कृतज्ञताके साथ स्वीकार करो।

काम वासना या सेक्सको एक मोहक किन्तु भयंकर पापके रूप में न देखो। यह तुम्हारी प्रकृतिकी एक भूल, एक गलत गति है। उसे पूरी तरह अस्वीकार करो, परन्तु जबरदस्ती करने से काम न चलेगा। उसे अपनेसे बाहरकी चोज समझो और अपने अन्दर घुसने न दो। वह हठ करके घुसना चाहे तो भगवान की शक्तिको बुलाओ। शान्ति, दृढ़ता और धैर्यके साथ भगवान् को बुलाओ। तुम्हारी विजय अवश्य होगी।

धन—सचमुच सारा धन भगवान्का है। आज वह जिनके हाथमें है उन्होंने उसे हड़प लिया है और उसका दुरुपयोग कर रहे हैं। साधक न तो धनके पीछे भागता है न धनको पापकी जड़ मानकर उससे दूर भागता है। धनको भगवान्की एक शक्ति मानो और उसे भगवानके हाथोमें सौंपनेकी कोशिश करो।

साधकको न तो पैसेके अभावमें दुःख होना चाहिये और न धन वैभवमें आसक्ति। जिनमें धन कमानेकी क्षमता है उन्हें वैरागी की तरह उसका बहिष्कार न करना चाहिये बल्कि अपने अहंका बहिष्कार करके बिना किसी ममता या संकोचके भगवान्के चरणोंमें चढ़ा देना चाहिये, भावना यही रहे कि तुम्हारी वस्तु 'तुमहिं अर्पत हों।'

कर्मसे मुंह न मोड़ो। काम शरीरके द्वारा की गयी भगवान्की सर्वोत्तम प्रार्थना है। हर कामको भगवान्का काम समझकर अधिकसे अधिक शुद्ध भावसे करनेकी कोशिश करो। यह भाव बनाये रखनेकी कोशिश करो कि यह भगवान्का काम है और उन्हींकी शक्तिसे, उन्हींकी सहायतासे पूरा होगा। जबतक यह भावना स्थिर न हो जाये तबतक कामके आरम्भमें भगवान्को बुलाओ, उससे सहायता मांगो और अन्तमें उन्हें धन्यवाद दो। इस तरहसे गाड़ी चल पड़ेगी।

भगवान्की सहायता पाना बहुत सरल है। वे हमेशा सहायता करनेके लिए तैयार रहते हैं, हम लेनेके लिए तैयार नहीं होते। श्रीअरविन्दने कहा है भगवान् क्या है? एक शाश्वत वाटिकामें, शाश्वत खेल खेलता हुआ एक शाश्वत बालक।

वह बालक हमें भी बालक बननेमें सहायता दे।

११

श्रीअरविन्द दर्शन

मनुष्य आदिकालसे सत्यकी खोज करता आया है। ऐसे अवसर आते रहे हैं जब मनुष्यने यही माना है कि 'यावज्जीवेत सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्' यानी जबतक जीना है सुखसे जी लो, ऋण करके घृत पीते जाओ। परन्तु इस सिद्धांतको कभी बहुत दिनोंतक नहीं माना जा सकता। जिनके पास सब कुछ है, जो समृद्धिमें लोटते हैं उनके सामने भी यही प्रश्न आ खड़ा होता है कि आखिर इस सबका उद्देश्य क्या है? जो कुछ पाया जा सकता था, पा लिया लेकिन अब? सब कुछ होते हुए भी उन्हें किसी चीजकी तलाश होती है जिसे वे स्वयं नहीं जानते।

पूर्व और पश्चिम दोनोंमें ही मनुष्यने अपने जीवनके उद्देश्य और उसकी सार्थकता जाननेके लिए बड़े-बड़े प्रयास किये हैं। जितने जिज्ञासु उतने ही मार्ग, परन्तु मोटे रूपमें हम इन्हें दो विभागोंमें बांट सकते हैं। एक तो वह जो भगवानको ही सब कुछ मानते हैं 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' ही जिनका नारा है, इनकी दृष्टिमें केवल ब्रह्म ही सत्य है और उससे भिन्न सब कुछ मिथ्या और स्वप्न। उनकी मान्यता है कि जैसे अंधकारमें रस्सीको देखकर सांपका भ्रम होता है उसीप्रकार हमें बुद्धि-

भ्रमके कारण यह संसार सत्य दिखायी देता है, पर सचमुच यह कुछ भी नहीं है। इस भ्रमसे निकलना सत्यमें विलीन हो जाना ही हमारे जीवनका (यदि कोई जीवन है !) एकमात्र उद्देश्य है।

दूसरी ओर प्राचीन चार्वाक अथवा आजके वैज्ञानिक हैं, जो इन्द्रियगम्य तथ्योंको ही स्वीकार करते हैं, उनकी दृष्टिमें अतीन्द्रिय वस्तुओंका कोई अस्तित्व ही नहीं है और अगर कुछ है भी तो वह मिथ्या आभास-मात्र अथवा सन्निपातके रोगीका प्रलाप है। उनके लिए जड़ भौतिक तत्व ही जीवनका अर्थ और इति है। मन तथा चेतनाके अन्य स्तर इसी जड़तत्वकी विभिन्न क्रियाएं और प्रतिक्रियाएं हैं।

इन दृष्टियोंके परिणामस्वरूप भारतमें जिन लोगोंको वर्तमानसे असन्तोष था, जो किसी उच्चतर जीवनकी चाह रखते थे, उन्होंने संसारसे किनारा कर लिया और गुफाओंमें या वनोंमें छिपकर चेतनाके उच्चतर शिखरोंपर चढ़ने लगे। दूसरी ओर यूरोपके लोगोंने जीवन और धर्मको अलग-अलग कमरोंमें बन्द कर दिया। उन्होंने यही माना कि भौतिक प्रगति करते-करते वे उस स्थिति तक जा पहुँचेंगे जहां हर-एककी हर आवश्यकता पूरी हो सकेगी—लेकिन इसके बाद ? यह प्रश्न दिनपर दिन जटिल होता गया और होता जा रहा है और जहां भारतमें विपन्नता और दारिद्रचका राज्य हो गया वहां यूरोप और अमरीकामें सम्पन्नता होते हुए भी मनुष्य खपुष्पकी खोजमें ऊबड़ खाबड़ मार्गोंपर दौड़ने लगा और आज स्थिति यह है कि उसने इतने साधन जुटा लिये हैं कि किसी भी दिन कुछ थोड़े-से सिर फिरे मिलकर इस धरतीके गोलेको एकदम नष्टभ्रष्ट कर सकते हैं—यह केवल जीवनको माननेका परिणाम है।

भारतके वैरागियोंने जीवनका बहिष्कार किया। समाधिमें वे चाहे जितने ऊंचे उठे हों पर सामान्य जीवन बिलकुल अप-

रष्कृत और गदला रह गया। भगवत-प्राप्ति केवल गिने-चुने लोगोंका उद्देश्य रह गया, साधारण मनुष्यके लिए धर्म और नीतिके कुछ नियम ही महत्व रखते थे। भारतीय वैराग्य मार्ग और यूरोपीय जड़ पूजा एक दूसरेके विरुद्ध खड़े हैं।

परन्तु श्रीअरविन्द इन दोनोंको परस्पर विरोधी न मानकर एक दूसरेका पूरक मानते हैं और उनका कहना है कि दोनों ही मार्ग—अन्य मार्गोंकी तरह—ऊपरसे चाहे जितने विरोधी लगते हों, पर सचमुच एक ही लक्ष्य ओर जा रहे हैं। उनका कहना है कि जब वेदान्त यह घोषणा करता है कि यह सब ब्रह्म है 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' तो उसका सीधा-सा मतलब है कि जो कुछ है सब ब्रह्म है, उससे भिन्न कुछ भी नहीं है और यदि यह सब ब्रह्म है तो ब्रह्मके अन्दर मिथ्याका प्रवेश ही कैसे हो सकता है। इसके अनुसार तो यह भौतिक जगत भी ब्रह्मका ही एक रूप है। उसीकी एक अभिव्यक्ति है।

श्रीअरविन्दके कथनानुसार भारतीय ज्ञानी चेतनाकी ऊंचाइयोंपर चढ़नेमें इतना मस्त रहा कि उसने विस्तारकी उपेक्षा कर दी। उसने चेतनाके चढ़ते हुए सोपानको तो भलीभांति जाना, पर उच्चतम शिखरोंसे निम्नतम गहराइयों तक उतरने वाली चेतनाकी अवहेलना कर दी; परन्तु दोनोंका ही समान महत्व है, दोनों ही समान रूपसे सत्य हैं और दोनोंका समान दर्शन ही हमें सत्य तक पहुंचा सकता है।

श्रीअरविन्द कहते हैं कि सारी सृष्टि एक ही चेतनाका खेल है। एकदम जड़ और निश्चेतन प्रतीत होनेवाली चीजें भी उसी चेतना, उसी ऊर्जाकी एक अभिव्यक्ति हैं। सारे संसारमें एक ही चेतना फैली हुई है उसीने अपने खेलके लिए भिन्न-भिन्न रूप धारण किये हैं। परात्पर सत्यमें जो शक्ति है वही शक्ति रसातलमें भी काम कर रही है। उनके अनुसार असत् भी चेतनाका वह क्षेत्र है जिसके बारेमें हमारी ऊंचीसे ऊंची उड़ान

भी केवल नेति नेति कह सकती है जो "हद बेहद दोनोंसे परे" है। हमारी अनुभूतियोंको भाषामें उसके लिए कोई शब्द नहीं है।

श्रीअरविन्दका कहना है कि वैज्ञानिककी नास्तिकता भी भगवान तक पहुँचनेमें उतनी ही सहायक है जितनी किसी वैरागीकी आस्तिकता। आधुनिक विज्ञानमें जो खोजकी लगन है वह उसे इतनी दूर तक ले जा चुकी है कि आगे खोजको बंद करना या उसकी गतिको धीमा करना असम्भव है। आजका वैज्ञानिक अपने भौतिक साधनोंके द्वारा यहांतक तो पहुँच चुका है कि जड़ तत्व अन्तिम या अविभाज्य वस्तु नहीं है वह अब विद्युदणु और उसके अन्दर छिपी हुई अपार ऊर्जाके रहस्य जाननेमें लगा है। अब उसने स्वीकार किया है (यद्यपि अभी बिना ननु-नचके नहीं) कि ज्ञान प्राप्त करनेके उसके भौतिक साधनोंके अतिरिक्त अन्य साधन भी हैं। आज हम अमरीकामें बैठे हुए आदमीके साथ यहांसे बातचीत कर सकते हैं और इसके लिए किसी तार या अन्य भौतिक साधनकी जरूरत नहीं होती, तो क्या यह मानना कठिन है कि इससे भी एक कदम आगे बढ़ा जा सकता है और रेडियो अथवा टेलीविजनके यंत्रोंके बिना भी अन्तर शक्तिके विकाससे दूरकी चीजोंको देखा देखा सुना जा सके। यह सब भौतिकसे अतिभौतिककी ओर स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर गतिके सूचक हैं।

यदि हम भगवानको मानते हैं तो हमें यह भी मानना होगा कि यह सृष्टि भी उसीके अन्दरसे निकले हुए ताने-बानेका परिणाम है। इन चौदह भुवनोंको जब उसने अपने अन्दरसे ही पैदा किया है तो उनमें असत्यका सवाल ही कैसे उठता है। हां, जैसा हम पहले कह आये हैं चेतनाके विभिन्न स्तर हैं और हर स्तर अपनेसे ऊपरवाले तक पहुँचनेके लिए और उसकी सहायतासे अपने आपको पूर्णरूपसे विकसित करनेके लिए प्रयास कर

रहा है जड़तत्वमेंसे जीवनका विकास हुआ। पशु योनिकी प्रयोग-शालापर मनके परीक्षण किये गये और फिर मानवकी बारी आयी। उसी भांति अब मानव चेतनामें अतिमानसके परीक्षण हो रहे हैं और अब अतिमानस योनिका आगमन अवश्यम्भावी है।

चेतनाने जब निश्चेतन जड़का रूप धारण किया, ज्योतिने अंधकारका, जीवनने मृत्युका बाना पहना और ज्ञान अज्ञान बन गया तो निविड़ अंधकारमेंसे एक पुकार उठी। उसके उत्तरमें उच्चतम चेतनाकी एक चिनगारी इस घन अंधकारमें कूदी और धीरे-धीरे अंधकारको प्रकाशकी ओर ले जानेकी यात्रा शुरू हो गयी। परात्पर चेतनाकी शक्तिने प्रेमका रूप धारण किया और वह भी अज्ञान अंधकार मृत्यु आदिके लोकमें कूद पड़ा। प्रेमने ही इस महान यात्राको संभव बनाया।

शुरूमें निम्न चेतना एकदम बिखरी हुई सी थी। उसमेंसे इष्टकी मूर्ति गढ़ना असम्भव था। धीरे-धीरे चेतनाके बिखरे तत्वों को इकट्ठा करके उनके अन्दर प्राण अथवा जीवन जागा और उसके बाद मनकी बारी आयी। अभीतक सब प्राणी जातिगत चेतनाके आधीन काम करते थे अब उनमें व्यक्तित्व आने लगा। सच्चा व्यक्तित्व अन्तरात्माके चारों ओर विकसित होता है परन्तु जबतक अन्तरात्मा आगे न आये तबतक अहंकार ही मनुष्यके व्यक्तित्वका केन्द्र रहता है। एक स्थितिमें अहंकार प्रगतिमें सहायता करता है परन्तु आगे चलकर वही बाधा बन जाता है क्योंकि वह सब कुछ अपने लिए चाहता है, वह ज्योति, ज्ञान और प्रेमके अवतरणमें बाधक होने लगता है। वह सारी चेतनाको अपनी छोटीसी चारदीवारीमें बंद रखनेकी कोशिश करता है।

लेकिन वास्तविक प्रगतिके लिए यह आवश्यक है कि अन्तरात्मा अधिकाधिक सामने आये अर्थात् जीवनमें सक्रिय भाग ले और उसकी सारी गतिविधिका नेतृत्व करे और सारे व्यक्तित्व

पर छा जाये। अन्तरात्मा ऊंचाईसे आती है इसलिए स्वभावतः उसे ऊंची चीजोंकी ओर आकर्षण होता है। वह सत्य, शुभ, और सुन्दरकी ओर आकर्षित होती है परन्तु इतना ही काफी नहीं है क्योंकि आमूल परिवर्तनके लिए सत्य सद्वस्तुके साथ एकतानता आवश्यक है। वही एकातानता निचली प्रवृतिके अन्दर वह परिवर्तन ला सकती है जिसके आधार लक्ष्य तक पहुँचनेके लिए तैयार हो सके।

१२

श्रीअरविन्द और भारत

हम पहले देख आये हैं कि श्रीअरविन्द जमीनके टुकड़ेको भारत नहीं मानते। उनकी दृष्टिमें भारत मां एक देवी है और आज उसका मुख्य काम है प्राचीन आध्यात्मिक ज्ञान और अनुभूतिको अपने पूरे वैभवके साथ प्राप्त करना, इसे आध्यात्मिक धारासे सींचकर नये दर्शन, साहित्य, कला, विज्ञान आदिको जन्म देना और भारतीयताके प्रकाशमें आधुनिक समस्याओंको हल करना और एक आध्यात्मिक समाजकी स्थापना करना।

स्वाधीन होनेके बाद भारतीय लोगोंने भारतीयताकी काफी हद तक उपेक्षाकी है। हम अपनी समस्याओंका हल आधुनिक अर्थात् पाश्चात्य ढंगसे करना चाहते हैं। चाहे शिक्षाकी समस्या हो या स्वास्थ्यकी, राजनीतिक प्रश्न हो या आर्थिक, हम हर चीजके लिए यही देखते हैं कि इस विषयमें रूसने, अमरीकाने तथा अन्य उन्नत कहे जानेवाले देशोंने क्या कहा और किया है। परन्तु हम भूल जाते हैं कि भारतकी समस्याओंका हल भारत ही कर सकता है। इतना ही नहीं जैसा श्रीमाताजीने कहा है भारतके अन्दर सारे संसारकी समस्याएं केन्द्रित हो गयी हैं और उनके हल होनेपर सारे संसारका भार हल्का हो जायेगा।

श्रीअरविन्द कहते हैं कि आध्यात्मिकता भारतीय मानसकी चाबी है। अनन्तकी भावना उसके लिए अपनी चीज है। भारतने शुरूसे ही, अपने तर्कप्रधान युगमें भी और बढ़ते हुए अंधकारके समय भी, इस बातका ध्यान रखा था कि केवल बाहरी दृष्टिसे, बाहरी समस्याओंको हलकर लेनेसे जीवन पूर्ण नहीं हो सकता। यह नहीं कहा जा सकता कि भारत भौतिक शास्त्रोंसे अपरिचित था या बाह्य जीवनको संगठित करनेमें किसीसे पीछे था। इन सब बातोंमें आगे होते हुए भी उसकी आंख इस तथ्यपर रही कि जो कुछ दिखायी देता है वही सत्य नहीं, उसके पीछे और उसके ऊपर ऐसी बहुतसी शक्तियां हैं जो अपने आप छिपी रहकर बाह्य जगत्को चलाती हैं। उसने जाना था कि मनुष्य जैसा दीखता है उससे कहीं अधिक महान् है। संसारके विकासमें मनुष्य ही आखिरी स्तर नहीं है अभी उसे बहुत ऊपर जाना है। उसे यह विश्वास था कि मनुष्य अगर अपनी आन्तरिक शक्तियोंको, अपने संकल्प और ज्ञानको ठीक तरह काममें लाये तो उसके लिए कोई काम असम्भव नहीं है। वह चाहे तो स्वयं भगवान तक पहुँच सकता है बल्कि उनके साथ एक हो सकता है। इस विश्वासने उसे एक दृष्टि दी। उसकी कला, उसका धर्म उसका आदर्श सब इसी भित्तिपर खड़े हुए।

इतना ही नहीं उसकी आध्यात्मिकता आसमानमें नहीं लटक रही थी। जैसे हिमालयकी एक चोटीके उठनेके लिए विशाल आधारकी जरूरत होती है उसीतरह यहां भी आध्यात्मिक ऊंचाईतक पहुँचनेके लिए सुदृढ़ जीवन की जरूरत थी। हम प्राचीन भारतकी प्राण-शक्तिको देखकर दंग रह जाते हैं। उसने जिस क्षेत्रमें हाथ डाला उसे धन्य कर दिया। राज सत्ता, गणतंत्र, भौतिक विज्ञान, विधि-विधान, राजनीति अर्थनीति, ललितकला—आप किसी भी क्षेत्रको ले लीजिये, कहीं भी दरिद्रता नहीं दिखायी देती। भारतने हर जगह सैकड़ों

हाथोंसे कमाया है और हजारों हाथोंसे दिया है। उसके साहित्य, कला, धर्मका झंडा सारे संसारमें लहराता था।

श्रीअरविन्दका कहना है कि आज कलाके वैज्ञानिक युगसे पहले प्राचीन भारतकी तुलनामें किसी देशने भौतिक विज्ञान में इतनी सफलता नहीं पायी थी। भारतीय गणित, ज्योतिष, रसायन, चिकित्सा, शल्य-चिकित्सा आदि अनेकानेक विषयों में हिन्दुस्तानने औरोंका मार्गदर्शन किया है। गेलिलियोसे बहुत पहले भारतमें 'चला पृथ्वी स्थिरा भाति'—पृथ्वी चलती है परन्तु स्थिर दिखायी देती है—कहा जा चुका था। तेरहवीं शताब्दीके आस-पास भारतीय भौतिकशास्त्र मानों सो गये।

श्रीअरविन्द कहते हैं कि हर देशकी कुछ अपनी विशेषता होती है जैसे प्राचीन रोम योद्धाओं, शासकों और राजनीतिज्ञोंका देश था। इसीप्रकार प्राचीन भारत ऋषियोंका देश रहा है। इस देशमें हमेशा ऋषि ही सर्वोपरि रहे हैं और वीर पुरुष उनसे एक कदम पीछे रहते थे। और यह परम्परा प्राचीन कालमें ही समाप्त नहीं हो गयी; बुद्ध, महावीर आदिसे लेकर शंकर, रामानुज, चैतन्य, नानक, कबीर, रामदास, तुकाराम, रामकृष्ण, विवेकानन्द, दयानन्द आदि और दूसरी ओर चन्द्रगुप्त, चाणक्य, अशोक, खालसा आदि हमारे सामने आते हैं। यह सारा काम भी घासके पुतले या निष्प्राण स्वप्नसेवियोंके वशका नहीं है। जो धारा हमें रामायण और महाभारतमें "दिखायी देती है" वही जीवनके हर क्षेत्रमें बह रही थी।

हम प्राचीन भारतकी महानताका रहस्य उसकी ऊपरी बातोंको देखकर नहीं लगा सकते। उन्होंने अपनी शिक्षाको ब्रह्मचर्यकी दृढ़ नींवपर खड़ा किया था। शरीरके अन्दर जितनी शक्ति और ऊर्जा बचती उसे बुद्धिकी सेवामें लगाया जाता था। इसीसे उनकी मेधा—ग्रहण शक्ति, धी—बुद्धिकी सूक्ष्मता, स्मरण-शक्ति, और सृजनात्मक अन्वेषण शक्तिका विकास होता था।

अध्यापकका कर्तव्य था कि विद्यार्थीके अन्दरसे तमसको निकाले, रजसपर लगाम लगाये और सत्वको जगाये। ब्रह्मचर्य और सात्विक विकासने ही भारतके मस्तिष्कका निर्माण किया और योगने उसे पूर्णता प्रदान की।

लेकिन पिछली सदियोंमें भारत पूरीतरह तममें पड़ा रहा है। संसारके कम ही देश इसतरह तामसिक हुए होंगे और शायद ही किसीने अपनी तामसिक वृत्तिको सुरक्षित रखनेके लिए इतना प्रयास किया होगा। इसीलिए हमने हर चीजके लिए प्रमाण ढूँढ़ने शुरू किये और बुढ़िया पुराण शास्त्रोंसे भी ज्यादा प्रामाणिक हो गया। लेकिन आध्यात्मिक रसकी धार नहीं सूखने पायी। भारतके जीवनमें नये-नये सोते फूटते ही रहे जिन्होंने अपने तपोबलसे भारतको प्राचीन यूनान, रोम, मिस्र आदिकी तरह लुप्त हो जानेसे बचाया।

भारतने राजनीतिक स्वाधीनता पा ली है, परन्तु हमारे दिमाग अब भी पराधीन हैं। आज हम पराधीनताकी अवस्थासे भी अधिक यूरोपपर निर्भर हैं। हमारी शिक्षा, हमारे विधि-विधान यहाँतक कि हमारा सोचनेका ढंग भी विदेशियोंका ऋणी है। हम अपने रीति-रिवाजको नहीं मानते, अंधविश्वासों की खिल्ली उड़ाते हैं। लेकिन इसका मतलब सिर्फ यही है वेद और पुराणको छोड़कर यूरोपके विचारकोंको—फिर चाहे वे मार्क्स हों या फ्रायड, काण्ट हों या नीत्शे—पूजते हैं। आधुनिकताके नामपर हर यूरोपीय वस्तुको गलेसे उतारनेके लिए तैयार रहते हैं।

श्रीअरविन्द कहते हैं यदि भारतको जीवित रहना है, यदि उसे अपना नियत काम पूरा करना है तो सबसे पहले भारतीय युवकोंको चिन्तन सीखना पड़ेगा। उन्हें हर विषयपर, हर दिशामें आजादीके साथ और सफल रीतिसे सोचना होगा और हर चीजकी गहराईमें पैठकर उसके हृदयतक पहुँचना होगा।

हर प्रकारके पक्षपात, पूर्वाग्रह और वितण्डावादको छोड़कर सत्यके लिए आग्रह करना होगा। हमारे मस्तिष्क यूरोपियन बच्चोंकी तरह कपड़ोंमें लिपटे हुए न रहकर देवोंकी अबाध गति वाले हों। हमारी बुद्धि केवल सूक्ष्म ही नहीं, बल्कि भारतके लिए स्वाभाविक दक्षता और अधिकारवाली हो और वह अपनी हीनता ग्रन्थिको काटकर अपने सच्चे मूल्यको जान सके। यदि वह पूरी तरह अपने बंधनोंको न काट सके तो उसके बंधन श्रीकृष्णके बंधन हों जिनकी सहायतासे उन्होंने यमलार्जुनको उखाड़ फेंका था। हमें भी प्राचीनके अंधे अनुकरण और आधुनिकताके दम्भपूर्ण हठको तोड़ना होगा। प्राचीन भित्तियाँ टूट चुकी हैं और हम परिवर्तन और उथल-पुथलकी बाढ़में बहे जा रहे हैं। इस समय न तो प्राचीन बरफकी सिलें पकड़नेसे काम चलेगा और न यूरोपकी दलदलमें जा उतरनेसे। हमें तैरना सीखना होगा और तैरकर शाश्वत सत्यके जहाजको पकड़ना होगा, हमें फिरसे सत्यकी चट्टानपर खड़ा होना होगा। और सावधान! इधर-उधरसे भारत और यूरोपकी चीजोंको बिना सोचे समझे इकट्ठा कर देनेसे भी काम न चलेगा यह पूर्व और पश्चिमका सामंजस्य नहीं, खिचड़ी होगी। यदि हम सचमुच सोचना शुरू करें तो भारतीयताको किसी प्रकारका खतरा न रहेगा।

श्रीअरविन्द कहते हैं कि हमारी शिक्षा-पद्धतिके कारण हमारे विशाल मन, चरित्र, दृष्टि, स्वाभाविक शक्तिके स्थान पर भद्दे भोंडे यूरोपीय जड़वाद तथा व्यापारी दृष्टिकी प्रतिष्ठा हो गयी है। हमारी शिक्षाने हमें प्राचीन बुद्धि और आध्यात्मिकता से दूर कर दिया है आज सबसे अधिक आवश्यकता है मौलिकता, अभीप्सा और शक्तिकी। हमें अपने मानसको ऊंचा उठाना होगा, अपने स्वभावके आभिजात्य और उदारताको फिरसे लाना होगा, आर्य दृष्टिसे फिरसे संसारको सुन्दर और भव्य बनाना होगा।

हमारे आदर्श ऊंचे और उनका चरितार्थ होना इतना ही निश्चित है जितना कलका सूर्योदय। ऊंचे आदर्शकी ओर रेंगकर नहीं जाया जा सकता। उसके लिए हमें उड़ान लेनी होगी, अपनी बलि देनी होगी। भारतका उत्थान केवल भारतके लिए नहीं समस्त संसारके लिए आवश्यक हैं। भारत सारे जगत्की समस्याओंको हल करनेके लिए प्रयोगशाला है। आज चाहे जितना अंधकार हो, कल ज्योतिर्मय होगा। श्रीअरविन्दने हमें विश्वास दिलाया है कि भारतीय संस्कृति ऐसी कच्ची नहीं है कि उसे नष्ट किया जा सके। वह हजारों वर्षोंसे आघात सहती आ रही है और फिर भी दुर्बल नहीं है। उसका भविष्य निश्चित रूपसे उज्ज्वल है।

१३

श्रीअरविन्द और मानव एकता

आजकल मानव समाज एक बड़ी अजीब स्थितिमें है। एक ओर उज्ज्वल भविष्य दिखायी देता है तो दूसरी ओर रसातल। आज उसे अपने भाग्यका फैसला अपने आप करना है। उसे तय करना है कि वह उज्ज्वल भविष्य की ओर दौड़ेगा या रसातलमें खो जायेगा। मनुष्यके मन और बुद्धिने बाह्य जीवनका इतना बड़ा ढांचा बना लिया है कि अब उसे संभालना असम्भव हो रहा है। उसकी राजनीति और अर्थनीति ऐसी भूल-भूलैया बन गयी है जिसमें से बाहर निकलनेका कोई रास्ता नहीं दिखायी देता। विज्ञान जो पहले उसका सेवक था अब एक बृहदाकार दानव बन गया है जो उसीको खानेके लिए दौड़ रहा है। मनुष्यने कला, आमोद-प्रमोद या कल कारखाने सभी क्षेत्रोंमें ऐसा कदम बढ़ाया है कि पीछे हटना असम्भव है और अपनी वर्तमान क्षमताओंके बलपर आगे बढ़ना भी उसके बसकी बात नहीं है। विज्ञानने भौतिक जगतपर काफी प्रभुता पा ली है और उसने संसारको इतना छोटा बना दिया है कि उसमें एकता लाना मुश्किल नहीं होना चाहिये। लेकिन इस सारी शक्तिका उपयोग कौन करता है? एक मामूली-सा मानव बौना, बौनोंका सामूहिक अहंकार। जिसके अन्दर विश्व-चेतना

का स्वप्न तक नहीं आता, जो ज्योति और शक्तिसे अपरिचित है। इसलिए हम संसारमें क्या देखते हैं ? मानसिक विचारों और आदर्शोंकी टक्करें, वैयक्तिक और सामूहिक इच्छाओं आकांक्षाओं, क्षुधाओंकी टक्करें और उनसे उत्पन्न कोलाहल। इसीकारण व्यक्ति-व्यक्तिमें, श्रेणी-श्रेणीमें और देश-देशमें रगड़े-झगड़े हो रहे हैं। हर-एक अपनी डफलीपर अपना राग अलापता है, हर-एक नये नारे लगाकर दुनियांकी सभी व्याधियोंको दूरकर सकनेका दावा करता है और जिसके हाथ में थोड़ी शक्ति आ जाये वही सारे समाजपर अपने विचार लादनेकी कोशिश करता है। कोई गोली और फांसीके जोरसे, कोई पैसेके जोरसे और कोई नैतिक दबावसे। परिणाम-स्वरूप स्थिति और भी बिगड़ी जाती है, मरने-मारनेकी नौबत आती है चारों ओर निराशा और जीवनकी व्यर्थताके भाव फैल जाते हैं और कलह बढ़ता जाता है, केवल उसके रूप बदलते रहते हैं।

प्राचीन कालमें मानव जीवन ज्यादा सरल था, इसलिए मनुष्यने आदर्शों, रीति-रिवाजों अथवा धर्म द्वारा अपने जीवनको एक चौखटेमें जड़ दिया, विधि-निषेधकी तालिकाएं तैयार कर लीं और भिन्न-भिन्न श्रेणियोंके लिए भिन्न-भिन्न स्तर निश्चित कर दिये। परन्तु समय आगे बढ़ता गया और पहलेकी सीमाएं टूटने लगीं। नये विचार, नयी धारणाएं, नयी क्षमताएं और नये तथ्य सामने आने लगे और उनमें आपस में क्रिया-प्रतिक्रिया होने लगी। इनको ठीक रखनेके लिए, इनमें तालमेल बिठानेके लिए किसी उच्चतर व्यक्तित्वकी जरूरत है जिसमें ज्ञान और शक्ति दोनों हों, जो इन सब तत्वोंको अपने दोनों हाथोंमें लेकर यथास्थान बिठा सके। विज्ञान और बुद्धि हर चीजका विश्लेषण कर सकते हैं और एक कृत्रिम ढंगसे उनका स्थान निश्चित कर सकते हैं परन्तु इनमें संश्ले-

षण करनेकी क्षमता नहीं है, वे वस्तुओंके सच्चे मूल्यसे अनभिज्ञ हैं अतः उनकी बनायी हुई रेतकी दीवार टिक नहीं पाती। हां, इन सब प्रयासोंका यह लाभ अवश्य होता है कि मनुष्यको अधिकाधिक अनुभव होने लगता है कि एक सच्ची एकता, सच्चे परस्पर सहयोग और आन्तरिक सामंजस्यकी जरूरत है। इतना ही नहीं, उसका अस्तित्व और भविष्य दोनों इसीपर निर्भर हैं।

आजके समाजमें व्यक्तिगत स्वाधीनताकी दुहाई तो खूब दी जाती है परन्तु साथ ही साथ व्यक्तिगत स्वाधीनता नामक चीज धीरे-धीरे उड़ती जा रही है। प्रायः सभी जगह देश और राष्ट्रकी भावना मजबूत होती जाती है और चारों ओरसे यह मांग की जाती है कि व्यक्तिगत अहं अपने आपको देश, जाति अथवा भावी संततिके अहंके लिए न्यौछावर कर दे। हमें बताया जाता है कि राष्ट्रीयकरण ही हमारे हर प्रश्नका उत्तर दे सकता है—हां, उसके रूप अलग-अलग हो सकते हैं। आज आग्रह किया जाता है धन, जन, बुद्धि, भावना सब कुछ राज्य को अर्पित हों। कहीं यह आग्रह खुले रूपमें होता है और इसका विरोध करनेपर आदमीकी जान जोखोंमें पड़ जाती है, कहीं यही चीज दोशालेमें लिपटे हुए जूतेकी तरह लगती है। ऊपर से देखनेमें पूरी स्वाधीनता होती है पर सचमुच देश, व्यक्ति और जन-समाजकी बागडोर कुछ इने-गिने पूंजीपतियों, मजदूर नेताओं, उद्योगपतियों या इसीतरहके कुछ अन्य लोगोंके हाथमें होती है। सिद्धांतके रूपमें राज्यकी प्रधानताका अर्थ है संगठित समाजके लिए व्यक्तिकी बलि। यद्यपि उसे इन पैने शब्दोंमें न रख कर यों कहा जायगा कि हर-एकसे यह आशाकी जाती है कि वह सबके भलेमें अपना भला समझे। परन्तु क्रियात्मक रूपमें क्या होता है? एक सामूहिक अहंकार के आगे उसकी राजनीति, अर्थनीति, सामूहिक नीति, शिक्षा

नीति आदिके आगे हर-एकको सिर झुकाना होता है। शासक वर्ग (जिन्हें जनताका प्रतिनिधि मान लिया जाता है) कुछ आदर्श अपना लेता है और कुछ महत्वाकांक्षाओंको मूर्त रूप देना चाहता है और हर-एकको उसके आगे सिर झुकाना पड़ता है। कभी यह शासक वर्ग गोलीके जोरपर ऊपर आता है तो कभी अपनी वाक्पटुता और सम्मोहिनी वाणीके जोरपर। लेकिन एक बात तो है ही। आजके राजनीतिक पुरुष, चाहे वे किसी देशके क्यों न हों, किसी देश या जातिकी आत्माके प्रतीक नहीं होते। वे प्रायः देशकी तुच्छ स्वार्थपरता, उसके अहंकार, आत्मवंचना, अक्षमता, भीरुता, दम्भके अच्छे प्रतिनिधि होते हैं। उनके सामने बड़ी समस्याएं आती हैं परन्तु वे बड़े-बड़े शब्दों और महान आदर्शोंकी दुहाई देते हुए भी समस्याओं का बड़ा समाधान नहीं कर पाते। बड़े आदर्श केवल राजनीतिक दलोंका ढिंढोरा पीटनेके काम आते हैं, जीवनकी समस्याओंके साथ उनका सम्पर्क तक नहीं हो पाता। बुद्धिमान् और बुद्धिहीन सभी इस शासक वर्गके हाथोंमें मामलोंको सौंपनेके लिए बाधित होते हैं। इसपर तुर्रा यह किसी कि यह वर्गका भला नहीं कर पाता। वह गिरता-पड़ता, ठोकरें खाता आगे बढ़नेका प्रयास करता है। क्योंकि प्रकृतिका नियम है कि वह मनुष्य की भूलोंके बावजूद, उसकी ठोकरें खाती हुई अवस्थामें भी किसी न किसी तरह उसे आगे बढ़ाती है।

आजकल राज्यने यह अनुभव करना शुरू किया है कि उसे समाजकी शारीरिक आवश्यकताओंको पूरा करना चाहिए और इस दृष्टिसे वह व्यक्ति और समूहका भला करनेकी कोशिश भी कर रहा है। परन्तु मुश्किल यह है कि मनुष्यको समाज और समूहकी सहायताकी आवश्यकता तो है पर कुछ निश्चित सीमाओंमें रहते हुए। राज्य एक मशीन है, वह सांचेमें ढालकर एक जैसी चीजें बना सकता

है, उसमें मौलिकता और विविधता, बोध और लालित्यके लिए स्थान नहीं होता। इसलिए वह व्यक्तिके विकासमें बाधक होता है। सचमुच उसे शारीरिक आवश्यकताओंको पूरा करनेके बाद व्यक्तिकी स्वाधीतापर हाथ न डालना चाहिए। शिक्षाका राष्ट्रीयकरण कैसे परिणाम ला सकता है, इसका कुछ आभास हमें मिल चुका है। मानव जातिकी प्रकृति और उसकी नियति के अनुसार हर व्यक्तिको अपने ढंगसे अपना मार्ग बनाते हुए पूर्णताकी ओर बढ़ना है। जातिकी सच्ची प्रगतिके लिए यह आवश्यक है कि उसके व्यक्ति प्रगति करें। हमें यह न भूलना चाहिये कि हर व्यक्तिके अन्दर आत्मा है और हर आत्मामें मानव-जातिकी सम्भावनाएं छिपी हुई हैं। कोई शासन व्यवस्था, कोई सुधारक, कोई धर्म कतर-ब्योंत करके उसे नमूने के अनुसार पूर्ण नहीं बना सकता। किसी शास्त्र, संस्कृति, या राज्य व्यवस्थाको यह अधिकार नहीं है कि वह यह बताये कि तुम्हें मेरे बताये हुए इस मार्गसे और इस सीमा तक प्रगति करनी है। ये बातें कभी उसके मार्गमें सहायता देती हैं और कभी बाधक होती हैं। मनुष्य इनका उपयोग करके या इन्हें लांघकर आगे बढ़ता जायगा। आध्यात्मिक युग मनुष्यको मशीनमें डालकर पूर्ण बनानेकी कोशिश न करेगा और न उसके हाथ-पांव बांधकर उसे सीधा रखनेकी कोशिश करेगा। आध्यात्मिक युगमें बाहरी नियंत्रण कमसे कम होगा।

इसीप्रकार समानता और भ्रातृभावकी बात है। अभी तक जिस समानताके स्वप्न लिये गये हैं वह एक कृत्रिम और अस्वाभाविक-सी चीज है, भ्रातृभाव तो अभी आकाश कुसुम ही बना हुआ है। लेकिन स्वाधीनता समानता और भ्रातृभाव आत्मा के शाश्वत लक्षण हैं। श्रीअरविन्द कहते हैं कि जब आत्मा स्वाधीनताकी मांग करती है तो वह आत्म-विकासकी स्वाधीनता है। ऐसी स्वाधीनता, जिसमें मनुष्यके अन्दर उसके सब स्तरोंमें

भगवान पूरी तरह अभिव्यक्त हो सकें। जब वह समानताकी मांग करती है तो वह चाहती है कि सबको इसतरह विकसित होने की आजादी हो, और सबके अन्दर उसी एक परमात्माकी उपस्थितिको माना और जाना जाय और जब वह भ्रातृभावकी मांग करती है तो वह स्वाधीनता और आत्मविकासको एक समान उद्देश्य, समान जीवन और मनकी समानताकी भित्तिपर खड़ा करती है। इसके पीछे यह ज्ञान काम करता है कि सबके अन्दर एक ही आत्म तत्व है। सच्चे मानव विकासके लिए एक गहरा भ्रातृभाव अनिवार्य है, परन्तु यह भ्रातृभाव मन या भावनाओं या पारस्परिक सुख-सुविधाके आधारपर न हो कर सच्चे प्रेम के आधार पर खड़ा होगा। इसकी जड़ें आत्माकी गहराइयोंमें हैं।

हम जिन्हें स्वाधीनता, समानता या भ्रातृभाव समझते हैं वे तो उनका आभासमात्र हैं। आज हमारे अन्दर दासता असमानता और द्वेषका राज्य है। जब ये चीज़ें अपने आपसे उकता जाती हैं तो अपने ही केन्द्रके चारों ओर कलाबाजियां करने लगती हैं और हम इन्हीं कलाबाजियोंको एकता आदिके नाम दे देते हैं। लेकिन सच्ची एकता और समानता तो तभी आयेगी जब मनुष्य भगवानको पा लेगा और उसे अपने जीवनमें, अपने भौतिक तत्वमें ला सकेगा। भगवान प्रकट होनेके लिए तैयार हैं पर उसकी परवाह न कर वे उसकी मूर्तियां बनाते है जो सचमुच हमारे अहंकी ही मूर्तियां हैं। हम उन्हींके चक्करमें फंसे रहते हैं इसीलिए असफलता हमारे गले पड़ती है।

बाहरी दृष्टिसे और पुराने अनुभवसे भी यही लगता है कि संसारमें एकता न आयी तो विनाश अवश्यम्भावी है। इस दृष्टि से संसारके सामने दो विकल्प हैं। संयुक्त-राष्ट्रका रूप बदल कर एक जगत् राज्यकी स्थापना हो। वह दो तरहसे हो सकता है। एक तो यह कि राष्ट्रोंका अस्तित्व ही मिट जाये, सारा जगत्

एक देश हो जो बहुतसे प्रदेशों और जिलोंमें बंटा हुआ हो। दूसरे यह कि हर देश अपने-अपने स्थानपर बना रहे और इन सबका मिलकर एक संघ शासन हो जो सबको एकसाथ लेकर चल सके। दोनोंमें अपनी-अपनी अच्छाइयां और अपनी-अपनी कमजोरियां हैं। हो सकता है कि आध्यात्म प्रधान मानव जाति किसी तीसरे ही रूपका आविष्कार करे। लेकिन एक बात जरूर है कि विश्व धर्म या मानव धर्म भविष्यके लिए सबसे अधिक आशाप्रद वस्तु है। यहां धर्मसे श्रीअरविन्दका मतलब किन्हीं विशेष रीति-रिवाजों, विधि-निषेधों या बाह्य क्रियाओंसे नहीं है। अभीतक विश्व धर्म बननेके लिए बहुतसे धर्म आगे आ चुके हैं पर किसीको सफलता नहीं मिली क्योंकि वे सब मन और बुद्धिके विश्वासोंपर आधारित थे।

मानव धर्मका अर्थ यह होगा कि मनुष्य इस बातको अनुभव कर सके कि सबके अन्दर वही एक आत्मा है। वह आत्मा हर व्यक्तिको, हर वस्तुको, अभिव्यक्तिकी, विकासकी पूरी-पूरी स्वाधीनता देती है। वह एकतानताकी जगह विविधता पसंद करती है। आत्माकी अभिव्यक्तिमें अभीतक तो मनुष्य ही सबसे ऊंची सीढ़ी है और मनुष्य तथा मानव-जातिका उपयोग करके ही वह संसारमें पूरीतरह प्रकट होगी। इस प्रसंग में प्रगतिका अर्थ होगा इस ज्ञानको अपने जीवनमें उतारना और आत्माको जीवनमें प्रकट करनेका प्रयत्न। इस आन्तरिक विकासके कारण मनुष्य यह अनुभव कर पायेगा कि उसके अन्दर भी वही आत्मा है जो उसके पड़ोसीमें या उसके दुश्मन कहानेवाले व्यक्तिमें है। एकताका यह ज्ञान सच्चा भ्रातृभाव लेकर आयेगा। इसके साथ जातिको भी इस चीजका अनुभव होना चाहिये कि उसकी पूर्णता और उसका स्थिर सुख व्यक्ति की स्वतंत्रता और पूर्णतापर निर्भर है।

अगर यह आदर्श मानव जातिमें जल्दी चरितार्थ हो सके

तो सभी समस्याएं आसान हो जायेंगी। जबतक यह न हो तबतक एकताके लिए किया गया हर प्रयास अपना मूल्य रखता है। अधिकाधिक लोग अगर इस बातका अनुभव कर सकें और उसे अपने जीवनमें लानेका प्रयास करें तो एक दिन आयेगा जब मनुष्य यह जान लेगा कि ऊपरी लीपापोतीसे काम नहीं चलता और तब सत्य जीवनकी बागडोर अपने हाथमें ले लेगा और फिर पूर्णता एक स्वप्न न रह जायेगी।

१४

श्रीअरविन्द सोसायटी तथा ऑरोविल

संसारके अधिकतर देशोंमें श्रीअरविन्दकी शिक्षामें रस लेनेवाले लोग फैले हुए हैं और उनमें बहुतसे यथासाध्य श्रीअरविन्दके बताये हुए मार्गपर चलनेका प्रयास करते हैं। श्रीअरविन्दका मार्ग व्यक्तिगत मोक्षके लिए तो है नहीं, वह समस्त जातिके अन्दर आमूल परिवर्तन करनेके स्वप्न लेता है। इसलिए यह आवश्यक मालूम हुआ कि इस काममें सक्रिय भाग लेनेवालोंका एक संगठन हो जिसका प्रत्येक सदस्य अपने-अपने स्थानपर रहता हुआ अपने-अपने क्षेत्रमें श्रीअरविन्दके बताये हुए मार्गके अनुसार जीवन बिता सके तथा अपने कामको श्रीअरविन्दके प्रकाशमें ऊंचा उठा सके। केवल इतना ही नहीं, ये लोग मिलकर सामूहिक रूपसे उनके कामको आगे बढ़ानेका और उनके बताये हुए आदर्श समाजको लानेका प्रयास कर सकें। इस उद्देश्यको लेकर सन् १९६० में श्रीअरविन्द सोसायटीकी स्थापना की गयी है। जीवनका कोई कोना श्रीअरविन्दने अछूता नहीं छोड़ा है। इसीतरह मानव उत्थानका कोई काम सोसायटीके क्षेत्रसे बाहर नहीं है। हर-एक अपने रस और अपनी क्षमताके अनुसार इसमें काम कर सकता है। जो लोग श्रीअरविन्दके जीवन-दर्शनमें रस रखते हैं उन सबका सोसायटी स्वागत करती है। इसके अति-

रिक्त श्रीअरविन्दने जिस सामंजस्यपूर्ण समाजका चित्रण किया है उसे मूर्तरूप देनेके लिए श्रीअरविन्द सोसायटीने पांडचेरीके नज़दीक ऑरोविल नामक एक अन्तर्राष्ट्रीय नगर बसानेकी योजना बनायी है जिसका शिलान्यास २८ फरवरी १९६८ को हुआ था। ऑरोविलका अर्थ है उषा नगरी। उसकी योजनाका परिचय देतेहुए श्रीमाताजी कहती हैं "ऑरोविल एक ऐसा सार्वभौम नगर बनाना चाहता है जहां सब देशोंके नर-नारी शान्ति और बढ़ते हुए सामंजस्यके साथ रह सकें। वह मत-मतान्तर, राजनीति और राष्ट्रीयतासे ऊपर होगा। ऑरोविलका उद्देश्य है मानव एकताको सिद्ध करना।"

और यह एकता एकरूपता न होगी, वह विभिन्नताओंको एक लड़ीमें पिरोये हुए होगी। ऑरोविलमें रहनेकी पहली शर्त है कि आपको समस्त मानव-जातिकी सारभूत एकतापर विश्वास हो और आप उसे मूर्तरूप देनेके लिए प्रयत्न करनेको तैयार हों। ऑरोविलमें पचास हजारकी बस्तीके लिए व्यवस्था होगी जिनमेंसे बीस हजार आदर्श ग्रामोंमें रहेंगे और बाकी तीस हजार अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य व्यापार आदिके क्षेत्रोंमें। ऑरोविलके पूर्वमें समुद्र हिलोरें ले रहा है और पश्चिम तथा उत्तरमें झीलें हैं। नगरका मध्य भाग एक ऊंची उठी हुई जमीनपर होगा। इसमें काम करनेके लिए भिन्न-भिन्न देशोंके इंजीनियर और आरकिटेक्ट आये हुए हैं।

इस नगरमें जीवनकी सभी आवश्यक बातोंका ख्याल रखा गया है। उद्योग, कृषि, शिक्षा, सांस्कृतिक क्रियाकलाप आदिके लिए अलग-अलग विभाग सुरक्षित हैं। हर व्यक्ति अपनी रुचि और क्षमताके अनुसार काम करेगा और उसके विशेष प्रशिक्षण की व्यवस्था भी रहेगी। वहांपर काम रोटी कमानेका अनिवार्य साधन नहीं होगा बल्कि कामके द्वारा हर व्यक्ति अपनी आन्तरिक क्षमताओंको खिलानेका अवसर पायेगा जिससे समाज

की भी सेवा होती रहेगी। नगरी सबके योगक्षेमकी व्यवस्था करेगी और हर-एकको उसके योग्य कामका अवसर देगी, इसलिए वहां बेकारी या भिखारीका स्थान न होगा। कोशिश यह की जायेगी कि हर व्यक्ति अपने जीवनको अन्दरसे नियंत्रित कर सके ताकि बाहरी विधि-निषेधकी जरूरत ही न हो। संसारमें व्यक्ति और समष्टिकी स्वतन्त्रताकी रक्षा करते हुए संघजीवनका क्या रूप होगा—इस विषयमें क्रियात्मक गवेषणा होगी और इस क्षेत्र में आनेवाली कठिनाइयोंका हल निकालनेका प्रयास किया जायेगा।

संसारके विभिन्न देशों और भारतके विभिन्न प्रदेशोंका अपना अपना मण्डप होगा जिसमें उनके कलात्मक जीवन तथा उनकी सांस्कृतिक विशेषताओंका प्रदर्शन होगा, संसारकी एकताको नजरमें रखते हुए एक विश्वविद्यालयकी स्थापना होगी, विभिन्न चिकित्सा पद्धतियोंको बिना किसी पूर्वाग्रहके अपनी-अपनी विशेष दिशाओंमें खोज करनेका अवसर मिलेगा। हर व्यक्ति और हर समूह दूसरेको नीचा दिखाये बिना अपने-आप ऊपर उठनेका अवसर पा सकेगा।

अगर संक्षेपमें कहें तो ऑरोविल श्रीअरविन्दके स्वप्नोंके भावी दिव्य समाजको मूर्तरूप देनेमें पहला कदम होगा। जिन्हें इन बातोंमें संदेह हो वे श्रीअरविन्दाश्रमके आजसे बीस वर्ष पहले के और आजके रूपको देखकर यह समझ सकते हैं कि ये शेख-चिल्लीके सपनेभर नहीं हैं। यदि विश्वको बचाना है, यदि मानव संस्कृति और मानव समाजको सृष्टिके पृष्ठसे मिट नहीं जाना है तो यह आवश्यक है कि ऑरोविलमें जो परीक्षण आरंभ हो रहा है वह सफल हो। श्रीअरविन्द इसका नेतृत्व कर रहे हैं, माताजी इसे मूर्तरूप दे रही हैं और विभिन्न राष्ट्र इसमें न्यूनाधिक रूपसे रस ले रहे हैं। हम आशा करते हैं कि उज्ज्वल विश्व का यह तरु शीघ्र ही संसारके सामने एक नया जीवन दर्शन,

और दर्शन ही नहीं, क्रियात्मक रूप रख सकेगा। माताजीने कहा है कि ऑरोविल शान्ति, मैत्री, भ्रातृभाव और एकताकी दिशामें प्रयास है। यह एक ऐसी जगह है जहां लोग केवल भविष्यके बारेमें ही सोच सकेंगे। वह उन लोगोंका स्थान होगा जो मानवताके वर्तमानसे असन्तुष्ट हैं और इससे ऊपरकी सीढ़ीपर चढ़नेके इच्छुक हैं। लेकिन जो वर्तमान सांसारिक जीवनसे सन्तुष्ट हैं उनके लिए ऑरोविल कोई अर्थ नहीं रखता।

ऑरोविलके अधिकार-पत्रमें श्रीमाताजीने कहा है : ऑरोविल किसी विशेष व्यक्तिका नहीं है। ऑरोविल सारी मानव जातिका है। लेकिन ऑरोविलमें रहनेके लिए दिव्य चेतनाका उद्यत और तत्पर सेवक होना जरूरी है।

ऑरोविल एक अनन्त शिक्षाका स्थान होगा, चिर प्रगति और ऐसे यौवनका स्थान होगा जो कभी बूढ़ा नहीं होता।

ऑरोविल भूत और भविष्यके बीच एक पुल होना चाहता है। बाह्य और आन्तरिक खोजोंका पूरा लाभ उठाते हुए ऑरोविल भावी साक्षात्कारी और निर्भीक होकर दौड़ेगा।

ऑरोविल वास्तविक मानव एकताके लिए भौतिक और आध्यात्मिक खोज करनेका स्थान होगा।

श्रीमाताजीने और एक जगह कहा है ऑरोविल अपने पैरों पर खड़ा होगा। वहां रहनेवाले सब लोग उसके जीवन और विकासमें भाग लेंगे, कोई सक्रिय और कोई निष्क्रिय रूपसे भाग लेगा। नगरमें कोई कर नहीं लगाये जायेंगे लेकिन वहांका हर व्यक्ति धन, सामान या श्रम देकर काममें हाथ बंटायेगा। वहांके उद्योग आदि विभाग अपनी आमदनीका कुछ भाग नगरके विकासके लिए देंगे। और यदि वे ऐसी चीजें तैयार करें जिनकी वहांके नागरिकोंको जरूरत हो (जैसे खाद्य पदार्थ)तो वे नगरको अपनी चीजें देंगे क्योंकि नगर सबको खिलानेके लिए उत्तरदायी होगा।

ऑरोविलके लिए कोई विधि-विधान नहीं बनाये जा रहे। जैसे-जैसे नगरके पीछे जो सत्य छिपा है वह अभिव्यक्त होगा वैसे-वैसे आवश्यक बातें होती जायेंगी। हम पहलेसे ही निश्चय नहीं करते।